वजूद

अखिलेश

हिन्दी ADDA

वजूद

वह एक विशाल जंगल था- अनगिनत वृक्षों, पौधों, फलों और पत्तों से भरा हुआ। जंगल के सामने जयप्रकाश अकेला खड़ा था।

आसमान में सुबह का सूर्य था और धरती पर केवल जंगल था और जयप्रकाश था। जयप्रकाश सूर्य को भूल गया था और अपने को भी, उसके लिए केवल जंगल का अस्तित्व था। जब वह जंगल में खोया हुआ था अथवा जंगल उसमें खो गया था, उसी समय बेटे कोमल की उसे पुकारती हुई आवाज़ ने विशालकाय जंगल के अस्तित्व को छिन्न-भिन्न कर दिया। कोमल की आवाज़ इसलिए इतनी ताक़तवर थी क्योंकि उसमें बहुत अधिक ख़ुशी थी। जयप्रकाश ने देखा कि कोमल बहुत तेज़ चला आ रहा है।

दोनों आमने-सामने हुए तो जयप्रकाश ने कहा, "इतना तेज़ क्यों चल रहे हो?"

कोमल ने कहा, "बाबू बड़ी खुशी की बात है।" उसकी साँस फूल गई थी। हाँफ़ते हुए बोला, "अख़बार में तुम्हारी फ़ोटो छपी है।"

कोमल ने अख़बार काँख से निकालकर पिता के सामने फैलाया। उसमें वाकई उसकी तस्वीर थी। पर मुश्किल यह थी कि जयप्रकाश को स्वयं अपना चेहरा अच्छी तरह याद न था। यूँ तो हर कोई जितना दूसरों का चेहरा पहचानता है उतना अपना नहीं, मगर जयप्रकाश अपने चेहरे से और भी कम परिचित था। हालाँकि उसने नाई और पान की दुकान के आईने में कई बार अपने को भली-भाँति देखा था लेकिन ज़ाहिर है कि केवल कुछेक बार। रोज़-रोज़ बड़े से आईने में अपना चेहरा देखता तो शायद अपने चेहरे से अधिक परिचित हो जाता पर लम्बे अरसे तक उसके घर में क्या कोई भी आईना नहीं था। न उसे और न उसकी घरवाली को कभी आईने की तीव्र इच्छा हुई थी। उसके घर में आईने के प्रवेश की कहानी आईने के एक टुकड़े से शुरू होती है...

जान (जयप्रकाश की पत्नी 'जान' का पूरा नाम जानकी था पर चूँकि जयप्रकाश की माँ का नाम भी 'जानकी' था, इसलिए उसने पत्नी का नाम 'जान' रख दिया।) जिस घर में काम करती, कुछ वर्ष पहले एक दिन वहाँ झाड़ूबुहारी कर रही थी, तो मालकिन ने कहा, "शीशे के टुकड़े पड़े हुए हैं, ज़रा सँभाल के उठाना, धँसने न पाएँ।"

"कैसे टूटा मालकिन ?"

"कुछ नहीं बस ऐसे ही।" मालकिन बोलीं। दरअसल असली वजह बयान करने में वह लाज का अनुभव कर रही थीं। हुआ यह था कि मालकिन के दाएँ नितम्ब पर एक फुन्सी निकल आई थी, जिसके दर्द से वह बेहाल थीं। फुन्सी ऐसी अजीब जगह थी कि वह ठीक से बैठ पाएँ न खड़ी हो पाएँ। बायीं करवट लेटतीं तो गनीमत वरना लेटना भी मुहाल था। इसी परेशानी के बीच उनमें उस फुन्सी को देखने की इच्छा पैदा हुई। वह

काफ़ी कोशिश के बावजूद उसे देख नहीं पा रही थीं। अतः रात को बन्द कमरे में बल्ब के उजाले में वह नितम्ब के सामने 4-8 इंच का आईना रखकर उसमें फुन्सी का प्रतिबिम्ब देखने का प्रयत्न करने लगीं पर तब भी देख नहीं पा रही थीं। उन्होंने गर्दन कई कोणों पर मोड़ा, नितम्ब को इधर-उधर हिलाया, कमर की माँसपेशियों को अलग-अलग तरह से लोच दिया लेकिन वह फुन्सी को देख नहीं पायीं। अन्ततः आईने को आड़े तिरछे घुमाने लगीं। इसी उलट-पुलट में आईना उनके हाथ से छूटकर ज़मीन पर गिरा और टूट गया। उन्हीं टूटे हुए टुकड़ों को जान उठाने जा रही थी। उनमें एक बड़ा टुकड़ा था।

शीशे के उस बड़े टुकड़े ने जान की आखों में झाँका, जान सनसनी, घबराहट और उल्लास से लबालब भर उठी। क्योंकि जयप्रकाश ने हज्जाम और पान की दुकान के आईनों में अपने को देखा था। लेकिन जान न कभी हज्जाम के यहाँ गई थी और न ही पान की दुकान पर। अब जब इस समय आईने ने ही शरारत से उसकी आँखों में झाँक लिया था तो वह क्या कर सकती थी...! उसने हिम्मत बटोरी और आईने को हाथ में लेकर आईने की आँखों में झाँका और इस बार जान नहीं आईना सनसनी, घबराहट और उल्लास से भर गया था। जान ने उसी हालत में आईने के उस टुकड़े को जो जान को देखकर आईना बन गया था, अपने आँचल में बाँधा और काम-धाम निपटा कर घर ले आई।

उस रोज़ जान ने आईने में बार-बार देखा। जयप्रकाश ने भी देखा। वह आईने में देखती फिर आईना जयप्रकाश को दे देती। जयप्रकाश आईने में देखता फिर आईना जान को दे देता। उन दोनों ने अपने को एक साथ आईने में देखने का यत्न किया पर वे एक साथ नहीं दिखे। क्योंकि आईने में तो एक का भी चेहरा पूरा नहीं दिख पा रहा था। कभी मत्था कट जाता, कभी कान, कभी ठोढ़ी।

सुबह उठने के बाद जान ने सबसे पहले देखा कि आईना अपनी जगह पर है कि नहीं। घबरा गई, आईना वहाँ नहीं था। पूरी कोठरी में नहीं था। वह बदहवास बाहर निकली कि जयप्रकाश से पूछे- आईना कहाँ ग़ायब हो गया। बाहर निकलकर देखा कि जयप्रकाश दातून कर रहा था और आईने में देख-देखकर अपने दाँत चमका रहा था। जान ने उसके हाथ से आईना छीन लिया, "पगला गए हो क्या जो इस तरह दतुअन करते हुए टहल-टहलकर इसमें दाँत देख रहे हो। मैं कहती हूँ कि ऐसे यह चार दिन नहीं चल पाएगा।"

वह आईने को लेकर भीतर कोठरी में आई और अपने पल्लू से पोंछकर उसे ताख पर रख दिया। फिर कुछ झुककर उसमें अपना चेहरा देखते हुए फुसफुसाई, "पगला गए हो क्या जो इस तरह दतुअन करते हुए टहल-टहलकर इसमें दाँत देख रहे हो... मैं कहती हूँ कि ऐसे यह चार दिन नहीं चल पाएगा।" वह मुस्कराने लगी, "चार दिन की बात छोड़ो, मैं कहती हूँ तुम कभी नहीं टूटोगे।" उसने जैसे आईने को यह वरदान दिया था जो बाद में सच साबित हुआ। क्योंकि बाद में उनके घर में एक नया आईना आया जो आते ही टूट गया। फिर उन्होंने नया ख़रीदने का उपक्रम छोड़ दिया था और इसी आईने के टुकड़े से काम चलता रहा। उसके वरदान के फलस्वरूप यह आईना जो कभी आईने का एक टुकड़ा था, और जो जान को देखकर आईने के टुकड़े से बदलकर आईना बन गया था, कभी नहीं टूटा। इसी में दिखे अपने आधे-अधूरे, टूटे-फूटे प्रतिबिम्ब की याद जयप्रकाश के पास थी जिसके आधार पर वह अख़बार में छपी अपनी फोटो देख रहा था...।

"इसमें मेरा फ़ोटू क्यों छपा है?" उसने बेटे से पूछा।

"तुम्हारी तारीफ़ है।"

"क्या तारीफ़ है, बता ना!"

"बाबू... ई अंग्रेज़ी में लिखा है।"

"तो का? इंगरेजी में पढ़कर हमको मतलब बता दे।"

"बाबू यही तो बात है, मुझको अंग्रेजी नहीं आती है।"

"तो स्कूल क्यों जाते हो, घुइयाँ निकालने?"

जयप्रकाश उखड़ गया, "अरे अपने मास्टर से पूछ लिए होते।"

"मास्टर ससुरऊ अंग्रेज़ी का जानें। इस अंग्रेज़ी लिखे का पूरा मतलब तो वकील साहेब भी नहीं बता पाए। पर कुछ-कुछ कामचलाऊ बात वही बता सके। ई अख़बार भी वही लेकर गाँव में आए हैं।"

"का बताए वकील साहेब?" जयप्रकाश खीझ गया।

"बताए कि गाँव में जो रवि कुमार आए थे, जिनकी बिटिया का दमा तुम ठीक कर दिए थे न, वही इस अख़बार में पत्रकार हैं। अपने गाँव के बारे में एक लेख लिखे हैं, उसी में तुम्हारे बारे में भी कहा है कि तुम बहुत गुनी हो।"

"बस यही बात है न, कौनो पुलिस कचेहरी के चक्करवाली बात तो नहीं है न?"

"नहीं।"

"तब ठीक है।" कहक़र जयप्रकाश आगे बढ़ गया।

अख़बार में छपी फ़ोटो और तारीफ़ पर पिता की यह उदासीनता देखकर कोमल निराशा और हताशा से घिर गया। वह जयप्रकाश को जंगल में जाते हुए देखता रहा। जब वह ओझल हो गया तो उसने अख़बार को मोड़कर पुनः काँख में दबाया और गाँव की दिशा में चल पड़ा। चलते हुए उसने सोचा, "मेरा बाप कितना बड़ा झक्की है।" दरअसल उसका पिता आज तक उसकी समझ में नहीं आया था। अख़बार पर जयप्रकाश की उत्साहविहीन प्रतिक्रिया को जाने भी दें तो अन्य अनेक ऐसे दृष्टान्त थे जो उसकी निगाह में पिता को अजीबोग़रीब सिद्ध करते थे। जैसे कि उसके पिता ने जब इसी पत्रकार रवि कुमार की बिटिया का दमा एक फल के बीजों की चार खुराक से ठीक कर दिया था तो रवि कुमार बोला था, "क्या तुम मेरा गठिया भी ठीक कर सकते हो ?"

जयप्रकाश ने कहा, "नहीं हुजूर बिल्कुल नहीं। बिटिया रानी का दमा भी मैंने कहाँ ठीक किया, वह ऊपरवाले ने ठीक किया और आपका गठिया भी ऊपरवाला ठीक करेगा।" जयप्रकाश अगले दिन किसी पौधे की नरम हरी पत्तियाँ लाया, उन्हें निचोड़कर रस निकाला और रवि कुमार को निर्देश दिया, "पी जाइए।" फिर उसने किसी अज्ञात तेल से भरी एक शीशी दी, "रोज़ाना दो बार इस तेल से बदन की मालिश करें। भगवान ने चाहा तो फ़ायदा होगा।" रवि कुमार गाँव की सम्पत्ति बेचने आए थे और पन्द्रह दिन रहे थे। इस अवधि में उनके गठिया में पूरी तरह भले फ़ायदा न हुआ हो लेकिन जोड़ों में तकलीफ़ काफ़ी कम हो गई थी। अतः जिस दिन वह गाँव से सपरिवार विदा होनेवाले थे, उन्होंने जयप्रकाश को अपने यहाँ बुलाया था। पिता के साथ कोमल भी चला आया।

"काहे को बुलाया साहेब?" जयप्रकाश ने पूछा।

"कुछ नहीं जयप्रकाश, बस धन्यवाद देने के लिए। तुम्हारे इलाज से मुझको, मेरी बेटी को फ़ायदा हुआ है।"

"अच्छी बात है साहेब, पर धन्यवाद ऊपरवाले को दें।"

रवि कुमार ने पर्स से सौ-सौ रुपए के दस नोट निकाले, "लो रख लो।" पर वाह रे ख़ब्ती बाप, जवाब दिया, "साहेब हम दवाई का पैसा नहीं लेते हैं। दोख होता है। बेचने पर हुनर ख़त्म हो जाता है।"

पिता की बात सुनकर वह कुढ़ गया था। चिड़चिड़ाकर उस समय उसने सोचा था, "कितना अभागा है उसका बाप। सामने रखी हज़ार रुपए की दौलत को ठुकरा रहा है। कह रहा है कि दोख होता है, हुनर ख़त्म हो जाता है। अरे लक्ष्मी मइया की सरासर बेइज़्ज़ती कर रहे हो, इससे दोख नहीं हो रहा है? वह भी देवी हैं, उनके ग़ुस्साने से नहीं तुम्हारा हुनर चला जाएगा? मैं तो कहता हूँ कि यह दोख-ओख कुछ नहीं होता है। सरासर फालतू बातें हैं। पर ये हमारे बाबू महाराज हैं कि इनको अभी भी दोख पाप की पड़ी है।" इस वक़्त भी जंगल से गाँव लौटते हुए उसने सोचा, "जब कुछ लेना नहीं, कमाना नहीं तो क्यों जंगल में भटकते रहते हैं? अगर किसी दिन किसी जानवर या कीड़े ने काट लिया तो..?"

सचमुच उसी समय जयप्रकाश के बगल से एक बड़ा सा साँप रेंगता हुआ गुज़र गया था। जयप्रकाश थोड़ी देर उसे जाता देखता रहा। इसके बाद एक झंखाड़ से निकलकर जयप्रकाश दूसरे झंखाड़ में घुस गया।

यह झाड़ इतना घना था कि कोई बाहर से देखता तो जयप्रकाश दिखाई न देता। उसने झाड़ के भीतर किसी पौधे को साँस रोककर देखा, फिर उसकी एक पत्ती को तोड़कर चुटकी से मसला और सूँघा। मायूस हुआ। वह उसी झाड़ में एक स्थान से दूसरे स्थान की तरफ़ बढ़ा। वहाँ कोई पेड़ था जिसमें पीले रंग के फूल उगे हुए थे। वह फूल तोड़ने के लिए उछला...। बाहर से कोई देखता तो उसे लगता कि भीतर कोई खूँख़ार जानवर घुसा है। इसी तरह वह जब कभी अपनी ज़ेब से चाक़ू निकालकर किसी पेड़ की छाल काटता या किसी पौधे का तना छीलता तो लगता था कि जैसे कोई जानवर अपने शिकार को खा रहा है। जब वह उस झाड़ को छोड़कर चला जाता था तो कहना मुश्किल हो जाता था कि जानवर खाने के बाद आराम फरमा रहा है, या उसकी भूख अभी ख़त्म नहीं हुई है और वह अगले आखेट के लिए घात लगाए बैठा है।

जब वह झाड़ से निकलकर बाहर आया तो उसके बाल बिखरे हुए थे। नंगे बदन पर जगह-जगह पत्तियाँ चिपकी हुई थीं। उस समय उसे देखकर कहना कठिन था कि अभी कुछ देर पहले वह प्रकृति से युद्ध कर रहा था, अथवा प्रकृति और उसके मध्य प्रेमालाप हुआ था।

उसने डोरी निकाली और एक पेड़ की कमर पर बाँध दी। पीछे के न जाने कितने वृक्ष जयप्रकाश की डोरी की करधनी पहने हुए थे। जंगल प्रदेश के एक बीमार मुख्यमंत्री का स्वप्न था। उसने एक विशाल चिकित्सा संस्थान की योजना बनाई थी। सोचा था कि अधुनातन उपकरणों और योग्यतम डॉक्टरों से सुसज्जित होगा यह अस्पताल। इसी में वह अपनी और अपने लोगों की बीमारियों का इलाज कराया करेगा। अस्पताल की आधारशिला का उद्घाटन भी उसी ने किया था और उस अवसर पर उसने घोषणा की थी कि अस्पताल से सटे हुए विशाल भूभाग पर चिकित्सा संबंधी औषधियों के पेड़-पौधे लगाए जाएंगे। बहुत कम समय में एक विस्तृत भूभाग छोटे-छोटे पौधों से भर गया था। वहाँ अस्पताल नहीं बना क्योंकि मुख्यमन्त्री को उनके पद से हटा दिया गया था। नए मुख्यमन्त्री की आँखों में आधारशिला का पत्थर चुभता था। उसमें पिछले मुख्यमन्त्री का नाम था इसलिए उसने अस्पताल के काम को रोक दिया। पौधों व वनस्पतियों में उसकी कोई दिलचस्पी नहीं थी। फ़ाइलों के कागज़ वृक्षों के विनाश से ही तैयार होते हैं, और वह फाइलों का कीड़ा था। अधिक से अधिक यही उसका वृक्षों से प्रतिशोध था। फ़िलहाल बर्ख़ास्त अस्पताल के बगल का वह भूभाग एक दिन सघन जंगल में बदल गया था।

जंगल से जयप्रकाश के रिश्ते का इतिहास प्रेम, भय और जुनून के अध्यायों में विभक्त किया जा सकता है। जब वह बच्चा था, क़रीब दस साल का, तो अपने पिता रामबदल के साथ जंगल में अक्सर आया करता था। शुरू-शुरू में वह यहाँ आने में हिचकता था लेकिन रामबदल उसे ज़बरदस्ती ले आता। यहाँ आ जाने पर रामबदल पेड़ से कोई फल तोड़कर उसे खाने के लिए दे देता था। जयप्रकाश बड़े चाव से उसे खाता। ये वे फल नहीं थे जो गाँव में दिखते थे। ये सर्वथा नए थे। वह उसे कोई फूल देता और कहता, "चबाओ।" उस फूल को जयप्रकाश चबाता तो उसका मुँह रस से भर जाता। इसी तरह रामबदल कभी किसी फल के बीज उसे खाने के लिए देता, कभी किसी पौधे की पत्ती देकर कहता, "इसे चूसो बहुत बढ़िया लगेगा।" जयप्रकाश को धीरे-धीरे जंगल की तलब लगने लगी और वह पिता के साथ ख़ुदबख़ुद यहाँ आने लगा। वैसे अब भी वह यहाँ स्वादिष्ट फलों, फूलों, पत्तियों तथा बीजों के खट्टे-मीठे संसार में ही भ्रमण करता था लेकिन फ़र्क़ यह आया कि इन सबके लिए वह पिता पर अपनी निर्भरता कम करने लगा था। धीरे-धीरे वह स्वयं अनेकानेक फलों, बीजों, फूलों, पत्तियों के रूप, रस, गन्ध को पहचानने लगा था। बल्कि एक दिन उसने पिता रामबदल को इस कदर चमत्कृत कर दिया कि वह उसे ठगा सा देखता रह गया था। उसने पिता से कहा, "काका एक पेड़ के फल का सुआद मिर्चा जैसा तीता है पर उसकी

छाल को छीलो तो दूध निकलेगा और वह दूध बड़ा मीठा है।" रामबदल रोमाँचित हो गया और व्यग्रता से बोला, "चलो हमको वो पेड़ दिखाओ।"

जयप्रकाश ने अथाह भीड़ भरे मेले में अपना खिलौना खो चुके बच्चे की सी मायूसी और दुख के साथ जंगल को देखा। चारों तरफ़ पेड़ ही पेड़। अपनी छाल के नीचे दूध का सोता छिपाए रखने वाला पेड़ जंगल में कहीं खो गया था। उस पर नीमअँधेरा, जिसे कोई चाहे तो नीमउजाला कह सकता था, जो भी हो पर इतने मामूली उजाले में बच्चे जयप्रकाश का वह पेड़ और अधिक गुम हो गया। रामबदल हँसा, "कहाँ है वह कलपदुम?"

पिता का प्रश्न और प्रश्न से बहुत ज़्यादा पिता की हँसी बच्चे जयप्रकाश को बेध गई। उसे अपने भीतर अपमान सरीखी किसी चीज़ की आँधी और आँसुओं की बारिश का अंदेशा हुआ। वह रोने ही वाला था कि उसमं कुछ कौंधा और उसने पिता से कहा, "थोड़ा सब्र करो, अभी ले चलूँगा उसके पास।" वह ख़ामोश होकर चौकन्नेपन के साथ खड़ा हो गया। थोड़ी देर वह वैसे ही खड़ा रहा, तब हवा चली और पेड़ हिले। जयप्रकाश का भाग्य था कि हवा ज़ोर से चली थी और पेड़ ज़ोर से हिले थे। जयप्रकाश ने अनगिनत वृक्षों के पत्तों की आवाज़ों के समुद्र में अपने वृक्ष के पत्तों की आवाज़ को जैसे ढूँढ़ा हो, वह पिता के साथ उस आवाज़ के पास पहुँचा। अब दोनों के सामने वह आवाज़ थी और उस आवाज़ का पेड़ था। उस पेड़ के सामने जयप्रकाश उस पेड़ के पत्तों की तरह ख़ुशी से काँप रहा था।

रामबदल का चेहरा ख़ुशी से चमक उठा था। वह पेड़ के तने को छील रहा था, तभी पेड़ से दूध छलक आया। उसने दूध चखा और पागल हो गया। वह बन्दर की तरह उछला और एक फल तोड़कर उसे कुतरने लगा। कड़वाहट उसके मुँह में भर गई और आनन्द से उसने बेटे को बाहों में भर लिया। पिता में ख़ुशी और वात्सल्य के साथ सफलता की नियामत पाकर जयप्रकाश फफक पड़ा। वह रो रहा था...रोते हुए बोलता जा रहा था, "काका काका....हमारी बात सही निकली न...काका हमारी बात सही निकली न...।"

इस वाकये के बाद दोनों जंगल में साथ आते थे, जंगल से साथ जाते थे मगर जंगल के भीतर वे अलग-अलग हो जाते थे। जब वे जंगल से निकलते तो रामबदल के झोले में कुछ जड़ी-बूटियाँ, पत्ते इत्यादि होते थे और जयप्रकाश की ज़ेबें उन फलों, बीजों आदि से भरी होतीं जिनमें खट्टे, मीठे, खटमिट्ठे स्वाद भरे रहते थे।

जयप्रकाश सोचता कि जंगल, गाँव सभी जगहों में इतने सारे फल, फूल, बीज, अन्न है पर किसी के स्वाद में नमक क्यों नहीं है। खट्टा, मीठा, कसैला, फ़ीका सारे स्वाद हैं

पर नमकीन कहाँ अदृश्य हो गया? इन्हें पैदा करनेवाली मिट्टी ने इन्हें नमक क्यों नहीं दिया ? वह सोचता, और इच्छा करता कि जंगल में उसे किसी रोज़ नमकीन फल मिल जाए तो कितना मज़ा आए...! वह गाँववालों को नमकीन फल चख़ाकर हैरान कर देता। उस फल को देख-चख़कर सबसे ज़्यादा हैरान तो काका होता।

फ़िलहाल नमकीन फल उसे नहीं मिला था किन्तु, नमकीन स्वाद के प्रति उसमें अद्भुत श्रद्धा भर गई थी। कभी-कभी नमक की डली को इस निगाह से देखता गोया दुनिया का कोई अनमोल रत्न देख रहा है। एक बार घास छीलते वक़्त हँसुए से उसकी अंगुली कट गई। उसने निकल आए ख़ून को चूसा, उसमें उसे नमकीन मिला। यह नमकीन की महिमा का अनोखा चमत्कार था। आदमी कितना मीठा, कड़वा, नमकीन, खट्टा खाता है पर खाने-पीने से जो रक्त बनता है वह केवल नमकीन होता है। इसी तरह मत्थे से चूकर ओंठों पर गिरे पसीने में भी उसे नमक मिला। उसने ठान लिया कि स्वादों के महाराजा नमक के स्वादवाले फल की वह ज़रूर तलाश करेगा। लेकिन अन्ततः जब उसे वह नहीं मिला तो उसने स्वीकार कर लिया कि भगवान ने खाने के लिए कितने सारे फल बनाए, अन्न बनाए लेकिन भगवान नमकीन न बना सका। नमकीन आदमी ने बनाया। फिर भी उसे उम्मीद थी कि इतनी बड़ी दुनिया में कोई न कोई ऐसी कुदरती पैदावार ज़रूर होगी जिसके स्वाद में नमक होगा।

मगर एक अन्य कौतूहल ने उसकी नमकीन फल में दिलचस्पी को क्षीण कर दिया था...। हुआ यह था कि वह अपने पिता रामबदल के साथ जंगल से लौट रहा था। रामबदल का झोला भरा हुआ था और जयप्रकाश की ज़ेबें फूली हुई थीं। रामबदल ने झोला बेटे को पकड़ाया और ट्यूबवेल पर जाकर हाथ-मुँह धोकर पानी पीने लगा। इसी बीच जयप्रकाश ने बाप के झोले में झाँक लिया था। झोला कुछ फलों, पत्तियों और जड़ी बूटियों से भरा हुआ था

जब रामबदल लौटा तो जयप्रकाश ने उससे पूछा, "काका, झोले में ये जो सब अगड़म-बगड़म भरे हो, इसका क्यो करोगे?"

"ये सब दवाई हैं।" रामबदल ने उकड़ू बैठकर झोले का मुँह खोलकर जड़ी निकाली, "इसको रात में पानी में डाल दो, सुबह उसी पानी को पियो तो बवासीर ठीक हो जाता है।"

"काका ये बवासीर कौन बीमारी है?"

"चुप बे, पहले सुन।" रामबदल ने झोले से कुछ फूल निकाले, "इसका रस सिर में लगाने से पुराना से पुराना अधकपारी ठीक हो जाएगा।" उसने इस बार नरम हरी पत्तियाँ निकालीं, "इनका रस गठिया की बीमारी में फ़ायदा पहुँचाता है। और ये जो..." वह उस झोले से कुछ बीज बाहर लाया। सफ़ेद उजले बीज, "इसे सुखाकर पीस लो, फिर खुराक बनाकर शहद के साथ दो, कैसा भी दमा हो ठीक हो जाएगा।"

"और काका वह जो बड़ा सा लाल फूल है...और वह..जो...वह नहीं...वह जो कुछ-कुछ जामुन की तरह है...।"

"उनके बारे में हमको पता नहीं...इसके बारे में बैद महाराज ही जानते होंगे।"

"अच्छा काका, ये सब जिस-जिस पेड़-पौधे के हैं उन सबके नाम क्या हैं?"

यह भी हमको नहीं पता...। इसके बारे में भी बैद महराज ही जानते हैं।"

"तुमको क्यों नहीं पता है?"

"हमका बैद महाराज बताए ही नहीं..।"

बैद महराज यानी कि पंडित केसरीनाथ। दोनों बैद जी की हवेली पर पहुँचे। जयप्रकाश की इच्छा हुई कि बैद जी से मिलने पर पूछ ले कि बड़ा-सा लाल फूल किस बीमारी को ठीक करता है, और जो जामुन की तरह का फल है वह किस बीमारी की दवाई है...।

लेकिन जब बैद जी आए तो उससे पूछा न गया। उनके आने पर पहले उसने पिता की तरह ही जैसे दीवार पर छिपकली चिपकती है उस तरह ज़मीन से चिपककर दण्डवत प्रणाम किया फिर उन्हें अपलक देखने लगा- बड़ा-सा गोरा भभूका मुँह, सिर पर पगड़ी, सिल्क का कुर्ता और बढ़िया धोती। कलाई में लाल धागा बँधा था और मस्तक पर त्रिपुंड। एकदम चमक रहे थे।

रामबदल ने झोला चरणों में रखा। बैद जी ने पास तख़्त पर रखे लोटे से पानी निकाला और छिड़ककर झोले को पवित्र किया। भीतर किसी को आवाज़ दी, "ये औषधियाँ हैं, इन्हें औषधालय में रखवा दो।"

जयप्रकाश बहुत प्रभावित हुआ- कैसी गूँजती हुई आवाज़, जैसे रामलीला में वशिष्ठ मुनि बोले थे।

लौटते हुए उसने रामबदल से कहा, "तुम भी दवाई के बारे में जानते हो तो तुम क्यों बैद महाराज की तरह नहीं बन जाते? वैसा ही कुर्ता पहनो, वैसी ही धोती... त्रिपुंड लगाकर वैसी ही मूँछ रख लो।"

रामबदल हँसा, "...और तुमको भी बैद महराज का लरिका बना दें- दिन भर रबड़ी मलाई चाभो।" वह पुनः हँसा, "अरे बचवा, बैद महाराज 'बैद महाराज' हैं और रामबदल 'रामबदल'। बस क़िस्सा ख़त्म। बैद महराज के अस्सी बिगहा खेत हैं और बाग-बग़ीचा। यहाँ तुम्हारे बाप के पास दुई बित्ता भुईं नहीं है। वे मालिक हैं और हम उनके हरवाह- उनके नौकर। हरवाह कभी ज़मींदार बना हैं आज तक... कि तुम्हारे बाप ही बन जाएँ? "

"अच्छा काका ! बैद जी के पास इतना रुपया आया कहाँ से? ...इतनी खेतीबाड़ी, और बाग़-बग़ीचा?"

"बैदकी से...।"

"बैद महाराज बैद कैसे बने?"

"उनके बाप बैद थे, उनके बाबा बैद थे...।"

जयप्रकाश चहका, "काका तुम बैद बन जाते तो तुम्हार लरिका हम, हमहु बैद महाराज बनते एक दिन!"

तभी उसने तकलीफ़ महसूस की। देखा कि रामबदल रास्ते में रुककर उसका कान उमेठ रहा था, "सरऊ! आज कहा तो कहा फिर कभी ऐसी बात जीभ पर न लाना, वरना बैद महाराज पता पाएंगे तो हमका-तुमका दोनो को सूली पर टाँग देंगे। बैद जी जब सूली पर टाँगते, देखा जाता, अभी तो कान ऐंठकर उसके बाप ने ही सूली पर टाँगा था।

सूली पर से वह उतरा। रामबदल ने उसका कान छोड़ते हुए कहा, "वाह-वाह! बाप पदहू न जाने बेटा शंख बजावे।"

जयप्रकाश को लगा कि अपने पिता से बात करना बेकार है। वह चुपचाप पिता के साथ चलने लगा। पर उसके मन में कुछ था जिसे रामबदल नहीं समझ सका था।

एक दिन रामबदल ने देखा, उसके घर के पिछवाड़े कुछ पौधे उगे हैं, और एक पौधे में गठिया ठीक करने वाले पीले फूल खिले हैं। घबराहट और बदहवासी में रामबदल ने अपनी पत्नी जानकी (जयप्रकाश की भी पत्नी का नाम जानकी) को पुकारा। जानकी

उस समय कूँचे से दुआर साफ कर रही थी, रामबदल की चिल्लाहट सुनकर डर गई। डरी हुई पिछवाड़े पहुँची तो देखा रामबदल खुरपी से पौधों को उखाड़ रहा था, उखड़े हुए पौधों के टुकड़े-टुकड़े कर दे रहा है। वह रोने लगी, "बेटवा ने इतने मन से इन्हें लगाया था.. तुम इनको उखाड़ क्यों रहे हो...?"

तब तक जयप्रकाश भी आ गया। अपनी बागवानी की दुर्दशा उससे देखी न गयी, वह भी रोने लगा था। शायद उसे लगा कि महज रोने से ही उसके दुख की पूरी अभिव्यक्ति नहीं हो पा रही है। इसलिए बाप की तरफ लपक कर उसके हाथ से खुरपी छीनने लगा। खुरपी पर रामबदल की पकड़ मजबूत थी, वह जयप्रकाश से न छिनी। लेकिन रामबदल को लगा कि बेटे में दम है और जल्दी ही वह खुरपी छीन लेगा। इसलिए खुरपी बेटे के हाथ में जाए, उसके पहले ही उसने जयप्रकाश को पटक दिया। जयप्रकाश वहाँ गिरा जहाँ खुरपी की कार्रवाई से जमीन की मिट्टी भुरभुरी हो गयी थी। उसका शरीर मिट्टी, पत्तियों और एक फूल की पंखुड़ियों से सज गया। जानकी ने बेटे को उठाया। बेटे के स्पर्श से उसमें इतनी ममता उमड़ी कि उसे गुस्सा आ गया। उसका मन हुआ कि बुहारी वाले कूँचे को पति की पीठ पर जमा दे, मगर उसने ऐसा नहीं किया। बल्कि गाली देकर रामबदल से बोली, "फूल पौधे ही थे, कोई कीरा-गोंजर नहीं थे कि उनको देख कर तुम इस तरह बौरा गये हो।"

जानकी का संवाद सुनकर रामबदल गुस्से से जलते हुए जानकी के करीब आ गया। उसकी इस हरकत से जानकी ख़ौफ़ज़दा हो गयी। जयप्रकाश भी अपनी तक़लीफ भूल कर देखने लगा था...। रामबदल जानकी के बिल्कुल पास आ गया। कड़ी आँखों से घूरा। फिर खुरपी को अपनी गरदन के चारों तरफ घुमा कर दांत पीसते हुए बोला, "ये दवाई वाले पौधे हैं, बैदजी को पता चल जाता तो न मेरी गरदन बचती न तेरी..।"

उसने जयप्रकाश की ओर देखकर कहा, "न इस ससुरे-साले के औलाद की।"

जानकी ने पाया कि रामबदल मारपीट नहीं कर रहा है, खाली कड़ुवे बोल कह रहा है तो उसकी हिम्मत बढ़ी। उसने कहा, "घर के पिछवाड़े में पेड़-पौधा लगाया है, इससे बैदजी को क्या मतलब? हम उनके खेत का धान गेहूँ तो काट नहीं रहे हैं, न उनके खेत का साग खोट रहे हैं, न आलू गंजी खोद रहे हैं...।"

रामबदल जवाब में कुछ बोला नहीं। केवल भयानक क्रोध तथा अवमानना से बेटे और पत्नी को देखता रहा...।

लेकिन रात को जब रामबदल का गुस्सा शांत हो गया था, जानकी ने जब रोटी पाथ कर पति और बेटे को खिला दिया तब रामबदल ने बताया कि उसके पिछवाड़े के पौधों से बैद महाराज को क्या मतलब है?

बैदजी नहीं चाहते थे कि रामबदल के पास वे चमत्कारी वनस्पतियाँ हों जिनके बूते वे बैद बने थे। क्योंकि यदि वे रामबदल के अधिकार में होतीं तो एक दिन रामबदल भी बैद बन सकता था। इसलिए जब उन्होंने रामबदल को जंगल से उन्हें लाने का काम सौंपा था तो कहा था, "किसका किस रोग के इलाज में इस्तेमाल है इसे जानने की कभी कोशिश मत करना वरना तुमको निपूता कर दूंगा, और यदि मेरी सोहबत में दो-चार के गुण जान भी गये तो तुम खुद कभी उनका उपयोग मत करना, नहीं तो तुम निपूते की पत्नी मेरे वीर्य से गर्भधारण करेगी... और तुमने अगर इन्हें कहीं बेंचा, उगाया या किसी को इनके बारे में बताया तो तुम्हारी और गर्भ सहित तुम्हारी पत्नी दोनों को नंगा कर गाँव भर में घुमा दूंगा, फिर अग्नि देवता को अर्पित कर दूंगा।"

शायद इसीलिए बैदजी ने उसे उन वनस्पतियों के वास्तविक नाम नहीं बताये। उन्होंने उनके वास्तविक नाम की जगह गाँव के लोगों का नाम दिया। वह रामलखन को निर्देश देते, "चार बेचू खुकुल ले आना। पांच खेलावन, नौ हरिश्चद्र, तीस जसोदा, अठारह बड़कऊ... साठ सत्तर माधुरी सिंह लाना...।"

लेकिन ये सब बातें, रहस्य और तथ्य रामबदल अपनी पत्नी और बेटे को ठीक-ठाक बता नहीं पा रहा था। यह उसकी अभिव्यक्ति की अक्षमता थी अथवा साफ साफ, सही-सही सब कुछ बताना नहीं चाहता था, अथवा वह कुछ बताना चाहता था, कुछ छिपाना चाहता था- इन सबके बारे में निश्चयपूर्वक कुछ कह सकना मुश्किल है।

वैसे उसने जो कुछ बताया उसका भी कुछ ही अंश जयप्रकाश की समझ में आया। ज्यादा हिस्सा उसके पल्ले नहीं पड़ा। इसलिए वह अभी भी इस उलझन से पूरी तरह उबर नहीं सका था कि अगर वह अपने पिछवाड़े कुछ पौधे उगा रहा है तो बैद महाराज की क्यों फट रही है! जब काफी मगजपच्ची के बावजूद वह भली-भाँति नहीं समझ पाया तो अंतत: उसने उस प्रसंग को भुला दिया और पहले की तरह जंगल में भटकने लगा।

वह मौका देखता रहता कि पिता किस दिन जंगल जाते हैं, और उनके साथ हो लेता था। अकेले जाने के लिए उसे मनाही थी और सच यह है कि अकेले जाने से वह डरता भी था। वैसे वह ऐसा जंगल नहीं था जिसमें शेर, चीते, भालू, हाथी, बाघ विचरण करते थे, किन्तु कम से कम साँप और अजगर की आशंका से तो इंकार नहीं किया जा

सकता था। जबकि उसका बाप केवल बवासीर, अधकपारी, गठिया और दमा की दवाई जानता था, साँप काटे की दवाई से वह नावाक़िफ था। यूँ तो बैद महाराज साँप काटने का इलाज करते थे, और उसका नुस्खा रामबदल ही लाता रहा होगा लेकिन उसका ज्ञान केवल चार रोगों- बवासीर, अधकपारी, गठिया, दमा तक ही सीमित था। उनको भी उसने बैदजी के भय से कभी आजमाया नहीं था। अन्य एक दो वनस्पतियों के फायदे के बारे में उसे अनुमान था पर यकीन के तौर पर वह नहीं कह सकता था कि वे इस रोग के बारे में शर्तिया फायदेमंद हैं। यह अनुमान भी साँप का विष दूर करने के मामले में न होकर खाँसी, बाई जैसी कुछ बीमारियों को लेकर था। साँप के विष का दुष्प्रभाव तो बैदजी ही ठीक कर सकते थे। जबकि जयप्रकाश को विश्वास नहीं था कि अगर उसे या उसके बाप को साँप ने काट लिया तो बैदजी दवाई करेंगे। जो बैदजी उसके पिछवाड़े उगे फूल पौधों को देख कर आगबबूला हो सकते थे वे भला उसकी, उसके बाप की दवाई क्यों करें! फिर साँप काटे का इलाज हो भी जाए तो वह जंगल का क्या करेगा? जंगल में अजगर दिख जाए और उसे निगल जाए या उससे लिपट कर उसकी हड्डियों का चूरा बना दे तो कौन दवाई काम करेगी? वह ये सोच कर ही सिहर उठता था। अत: वह अकेले जंगल जाने की हिम्मत नहीं जुटा पाता था। सच बात यह है कि यदि जंगल में अजगर मिल जाता तो उसका पिता भी क्या कर लेता, लेकिन सच बात यह भी थी कि जब रामबदल साथ रहता था तो बड़ा से बड़ा डर भी जयप्रकाश को छू नहीं पाता था। इसलिए जब रामबदल बैदजी के काम से जंगल जाता तो मौके का इंतजार कर रहा जयप्रकाश उसके साथ हो लेता था।

लेकिन एक दिन जंगल उसके और रामबदल दोनों के संसार से दूर चला गया, अथवा वे जंगल की दुनिया से बेदखल हो गये। इस विस्थापन से जयप्रकाश को यह दुख नहीं था कि अब वह नमकीन स्वाद वाला फल कभी भी गाँव वालों को नहीं चखा पाएगा। उसे यह दुख भी नहीं था कि अब उसकी जेबें फलों, फूलों और स्वादिष्ट बीजों से कभी भी भरी नहीं मिलेंगी-दरअसल वह इतने भयानक संकट और दुख के प्रलय से गुजरा कि ये छोटे-छोटे दुख अपनी अर्थवत्ता या अपना प्रभाव खो बैठे थे। इनकी कोई बिसात नहीं रही...।

घटित इस तरह हुआ था- जेठ का महीना था... उस साल प्रचंड गर्मी पड़ रही थी। मालूम नहीं गर्मी का कोप था या भगवान की मर्जी या लंबरदार के यहाँ से मिली बासी-तिबासी दाल खाने का नतीजा था, जयप्रकाश की माँ को लगातार उल्टियाँ होने लगीं और उसका पेट चलने लगा था।

पास पड़ोस के लोग चिंता प्रकट करने लगे। उनके चेहरे मटमैले, भारी और उदास थे। बातचीत के दौरान होठों से अधिक उनके सिर हिल रहे थे। उनमें से किसी ने रामबदल से कहा, "देखो बिचारी बचती है कि नहीं।" जयप्रकाश ने इस वाक्य को सुना था और सुन लेने के बाद जब इसे समझा और उसके बाद इसे अपने अंदर महसूस किया तो रोने लगा। रोते हुए उसने रामबदल से पूछा, "बाबू अम्मा मर जाएगी?" रामबदल बिगड़ उठा, "चुप! ससुर कुभाखा बोल रहे हो।" मगर जयप्रकाश चुप नहीं हुआ, "बाबू हमको चाहे मारो, चाहे जो करो, पर अम्मा को बचा लो... जाकर बैदजी के यहाँ से दवाई लाओ।"

पड़ोसियों का भी कहना था कि वह बैद महाराज का काम करता है तो उनसे दवाई क्यों नहीं माँगता। रामबदल ने सब सुना लेकिन उसने किया और कहा कुछ नहीं।

जब दबाव ज्यादा बढ़ने लगा तब उसने मुँह खोला, "गया था। मैं बैद महाराज के यहाँ गया था चाचा! वे बोले- फागुन से लेकर अब तक चार बार दवाई दे चुके हैं। रोज-रोज मुफ्त की दवाई नहीं मिलती। भगा दिया हमको वहाँ से।"

"फिर तो अब भगवान ही मालिक हैं।"

वे सारे लोग किसी चीज की... किसी चमत्कार.. किसी अपशकुन की प्रतीक्षा करने लगे। रामबदल एक ईंट पर सिर पकड़ कर बैठा था। तभी जानकी को मितली महसूस हुई, वह उल्टी करने के लिए उठने लगी लेकिन वह इतनी कमजोर हो चुकी थी, थक गई थी कि उठने के पहले ही उसे उल्टी हो गई और वह अपनी खटिया पर छितरा गयी। बदबू का तीखा भभका निकल कर चारों ओर फैला। जानकी अपनी इस दुर्गति पर रोने लगी।

बाहर रो रहे जयप्रकाश ने रामबदल की हथेली पकड़ कर उसे खड़ा किया और कहा, "बाबू तुम खुद क्यों नहीं जंगल से कोई दवाई लाते अम्मा के लिए?"

"मैं कैसे लाऊँ?"

बात सच थी। बैदजी का सख्त निर्देश था कि रामबदल कभी खुद बैद बनने की जुर्रत न करे। अगर वह उनकी निषेधाज्ञा के उल्लंघन का जोखिम उठाये तो भी क्या करेगा? वह सिर्फ बवासीर, गठिया, अधकपारी और दमा का निदान करने वाली वनस्पतियों से परिचित था।

लेकिन इस वक्त रामबदल का दिमाग संसार की तीव्रतम गति से दौड़ रहा था। उसे थोड़ा-थोड़ा याद आया कि हैजा के कुछ मरीजों को बैद महाराज ने किसी पौधे की कंटीली पत्तियों का रस निचोड़ कर गुड़ के साथ दिया था...। उसने उन पत्तियों और उन्हें धारण करने वाले पौधे की शक्ल याद करने की कोशिश की। उसे कुछ-कुछ दिखा...। साथ ही उसे यह भी दिखा कि वह जंगल का एक दुर्लभ पौधा था जो तमाम पौधे, वृक्षों, झाड़ियों के बीच अपने को छिपाये रखता था। कभी-कभी बहुत खोजने के बाद मिलता था, मगर कभी-कभी वह अकस्मात बहुत जल्दी... तुरन्त भी मिल जाता था। वैसे अगर वह जल्दी मिल जाता तो भी जरूरी नहीं था कि वह वाकई जानकी के रोग के लिए कारगर था। यह तो महज रामबदल का अंदाजा था कि उसकी पत्तियों का रस गुड़ के साथ लेने पर बीमारी खत्म हो जाएगी।

रामबदल जाने के लिए बढ़ा।

एक पड़ोसी ने पूछा, "कहाँ जा रहे हो रामबदल?"

"बस ऐसे ही, अभी आया।" रामबदल ने गोलमोल जवाब दिया। वह नहीं चाहता था कि कोई जाने कि वह जंगल जा रहा है। वर्ना बैद महाराज को पता चला तो जानकी बीमारी से मरेगी, वह बैद महाराज के जुल्म से।

थोड़ी दूर चलने के बाद उसने देखा, जयप्रकाश भी पीछे-पीछे चला आ रहा है।

कुछ देर बाद दोनों जंगल में थे। उस दिन जयप्रकाश नमकीन स्वाद वाले फल की खोज करने नहीं गया था। उस दिन वह अपनी जेबों में मीठे, खट्टे फल और पत्तियाँ नहीं भर रहा था। उस दिन वह केवल माँ की दवाई खोजने में लगे अपने पिता के अभियान को व्यग्रता से देख रहा था, और प्रार्थना कर रहा था कि पिता कामयाब हों।

रामबदल जंगल में कँटीली पत्तियों वाला पौधा ढूँढ रहा था। उसकी तलाश में वह जंगल से ऐसे बुरी तरह जूझ गया था कि शरीर पर काँटे चुभ गये और उसकी चीथड़ा कमीज रंग-बिरंगी हो गयी। चीथड़ा कमीज को किसी रंगरेज ने नहीं रंगा था- उस रंग-बिरंगे में जो रंग थे वे प्राकृतिक थे। वे फलों, पत्तियों के रंगीन द्रव थे। जब पौधा उसके हाथ लगा तब तक उसकी हथेलियाँ भी रंग उठी थीं। हथेलियों की रेखाओं, मैल, उंगलियों पर पड़ी गाँठों और त्वचा की निष्प्रभता को रंगों के सौन्दर्य ने ढँक लिया था।

समूचे प्रकरण में एक खास बात यह हुई कि जब वह झाड़ियों के बीच जूझ रहा था तभी कोई फूल या कोई अन्य चीज उससे घिस गयी या जाने क्या हुआ कि उसका शरीर एक

अद्भुत खुशबू से भर उठा। उसने सपने में भी नहीं सोचा था कि कभी उसके शरीर का सुगन्ध से वास्ता होगा। इसलिए शुरू में उसे लगा, खुशबू उसके शरीर में नहीं जंगल में है। लेकिन जब वह कँटीली पत्तिया~ लेकर जयप्रकाश के साथ जंगल से बाहर निकला तो जयप्रकाश पत्तियाँ मिल जाने की सनसनी से उबर कर चिल्ला पड़ा-

"काका.. तुम्हारे बदन से खुशबू आ रही है।'" घर पहुँचने की यात्रा में वह अक्सर बीच-बीच में चिल्लाता, "काका...सचमुच तुम्हारे बदन से खुशबू आ रही है।" अब जा कर रामबदल को भरोसा हुआ कि वह वाकई महक रहा है।

घर पहुँचकर रामबदल ने एकान्त में चुपके से पत्तियों को धोया और निचोड़कर रस निकाला, फिर उसमें गुड़ मिलाकर जानकी को पीने के लिए दिया। जानकी को खटिया की पाटी पर बैठा कर वह पंखा झलने लगा।

बाँस की खपच्चियों से बना वह पंखा गर्मी से बचाव के लिए मनुष्य का पहला आविष्कार था। उसके नामकरण में हवा को चीर कर आगे बढ़ने वाले परिंदों के पंख की सुन्दरता थी। रामबदल के हाथ में डोल रहा पंखा परिंदोम के पंख की तरह हवा को मथ-चीर रहा था। ठंडी हवा मिलने पर जानकी ने कराहा और आश्चर्य से बोली, "इतनी बढ़िया महक कहाँ से आ रही है?"

पंखे की थोड़ी सी हवा रामबदल के पास भी पहुँची। तब उसने सोचा, "जयप्रकाश ने सुबह से कुछ खाया नहीं है। बहुत भूखा होगा।"

जानकी की बीमारी के कारण चूल्हा नहीं जला था। वह बैद महाराज के यहा' भी सुबह से नहीं गया था, वरना खाने को कुछ मिल ही जाता। उसने महसूस किया कि भूख उसे भी लगी है। उसने तय किया कि वह और जयप्रकाश दोनों बैद महाराज के यहाँ चलें। हो सकता है दोनों को पेट भरने के लिए मिल जाए। अगर एक ही आदमी की खुराक मिली तो बेटे को दे देगा।

उसने जयप्रकाश से कहा, "जरा मेरे साथ चल।"

"कहाँ?"

"चल तो।"

जानकी की तीमारदारी का काम एक पड़ोसिन को सुपुर्द कर वह खुद बेटे के साथ बैद महाराज की हवेली की तरफ चला। रास्ते में वह डर रहा था कि जंगल से जानकी की

दवाई लाने की बात कहीं बैद महाराज को पता न चल चुकी हो। लेकिन वह और उसका बेटा दोनों भूखे थे, और बैदजी की हवेली पर खाना मिलने की उम्मीद थी, इसलिए वह वापस नहीं लौट सका था।

हवेली पर पहुँच कर दोनों ने कूँचा उठाकर दुआर बुहारना शुरू कर दिया। दुआर क्या, वह एक बगीचा था जिसमें जामुन, नीम, अमरूद, आम, गुड़हल और बेल के पेड़ लगे थे। उनसे टूट कर उनकी पत्तियाँ जमीन पर बिछी हुई थीं। पत्तिया~ इतनी ज्यादा थीं कि जयप्रकाश को बुहारने में दिक्कत हो रही थी। रामबदल ने इसे समझा और उससे बोला, "पहले एक बार तुम कूंचा चला दो, बाद में मैं ठीक से साफ कर दूंगा।'" जयप्रकाश बुहारी करने लगा तो वह पानी लाने चला गया।

पानी छिड़कने के बाद जमीन से एक महक उठी और लगा जैसे मौसम बदल गया है और शाम हो गई है।

भीतर से चारपाइयाँ और कुर्सियाँ ला कर लगा दी गईं। बैदजी आकर बैठे। अब मुलाकातियों के आने का सिलसिला शुरू होने वाला था।

रामबदल और जयप्रकाश हवेली की ड्योढ़ी पर चले गये। वहाँ बैदजी की छोटी पतोह उन्हें खाना देने के लिए आई तो ठिठक कर चौंक पड़ी, "अरे ये इत्ती बढ़िया महक?"

उसने महक के स्रोत के लिए इधर-उधर देखा लेकिन रामबदल की तरफ नहीं देखा। वहाँ सुगन्ध होने का सवाल कहाँ उठता था? ...जबकि वह वहीं थी।

छोटी पतोह को जब कहीं भी महक का स्रोत नहीं दिखा तो वह आगे बढ़ी। उसके नथुनों ने महक को और ज्यादा तीव्रता से महसूस किया। अब उसने रामबदल को गौर से देखा, महक वहीं थी और वहीं से चारो ओर फैल रही थी। वह खाने के बरतन उसी तरह हाथ में लिए हुए भीतर की ओर भागी...।

कुछ ही क्षण बीते होंगे कि वह घर की बाकी बहुओं-बेटियों के साथ आ खड़ी हुई। चौखट के इस पार रामबदल और जयप्रकाश थे, उस पार स्त्रियों का एक मेला था। वे नथुनों से साँस खींचतीं और मदहोश हो उठतीं, "आह! क्या महक है!" वे आपस में बतिया रही थीं, एक दूसरे को चिकोटी काट रही थीं और खिलखिला कर हँस रही थीं, और जोर-जोर से साँस लेकर एक दूसरे पर लुढ़की जा रही थीं।

जयप्रकाश अपने पिता को केंद्र-बिन्दु बनते देखकर बेहद खुश था। उस समय वह अपनी माँ को भी भूल गया था। मंद-मंद मुस्करा रहा था शायद। क्योंकि उसके होठों का दाँया कोना हल्का सा खिंच गया था।

रामबदल से स्त्रियों ने सवाल पूछना शुरू कर दिया- इत्र है? कौन सा इत्र है? कहाँ पाया? कौन बाजार से लाया? कहा~ से चुराया?

जयप्रकाश का मन हुआ, बता दे कि उसके बाप को खुशबू कहाँ से मिली। लेकिन वह यह सोच कर खामोश रहा कि देखें ये सब बूझ पाती है कि नहीं।

तब तक गौने का इन्तजार कर रही बैद महाराज की छोटी बेटी ड्योढ़ी फलांगती हुई बैदजी के पास पहुँच गई और उन्हें सारा वाक्या एक साँस में बता कर बोली, "पिताजी मुझको भी वैसा इत्र चाहिए।"

"कैसा इत्र?" बैदजी गरजे।

रामबदल की पेशी हुई। जयप्रकाश खुश था कि देखें बैद महाराज असलियत भाँप पाते हैं कि नहीं। तमाशा देखने के इरादे से वह भी रामबदल के साथ बैद महाराज के दरबार में चला आया।

"क्या रे?" बैदजी ने साँस खींची। रामबदल के शरीर से निकलकर उड़ी हुई वह अद्‌वितीय गंध बैदजी की साँसों में दाखिल हुई। बैदजी अभिभूत हुए किन्तु, अगले ही पल उनका चेहरा विकृत हो गया, "हरामी... इत्र लगाकर आये हो... शौकीन बुढ़िया चटाई का लहँगा।" वहाँ बैदजी की कृपा लेने आये सभी लोग हँसने लगे। गौने का इंतजार करने वाली बिटिया भी मुँह दबा कर हँसने लगी। केवल तीन लोग नहीं हँस रहे थे- रामबदल, जयप्रकाश और बैदजी। जयप्रकाश सहमा हुआ था। रामबदल स्याह पड़ता जा रहा था।

बैदजी चिल्लाये, "कहाँ पाया इसे?"

रामबदल खामोश।

"जवाब दे कमीने।"

रामबदल के गले से फों...फों... की आवाज भर निकली।

बैदजी ने मेज पर रखा खरल रामबदल के ऊपर फेंक कर मारा, "इस कुत्ते की औलाद में इतनी हिम्मत कि महकेगा... देख क्या रहे हो... इस सुअर को लगाओ सौ जूते...।"

जोर की आवाज़ हुई और रामबदल के चेहरे पर जूता पड़ा...। कुछ लोग वहाँ खड़ाऊँ भी पहने थे, कुछ चप्पल, तो कुछ नंगे पाँव थे- सभी अपने तरीके से रामबदल पर झपटे।

जयप्रकाश पिता को बचाने के लिए दौड़ा लेकिन वह कुचल दिया गया था। उसे किसी ने उठाकर ऊपर हवा में लहराया और गेंद की तरह फेंक दिया। थोड़ी दूर जाकर वह जमीन पर गिरा और दर्द से कराह उठा। उसके भीतर अपनी चोट की तकलीफ थी, बाहर चिल्लाने-मारने की आवाजें थीं। लोगों की हमलावर भीड़ थी जिनके बीच उसका बाप पिट रहा था।

तभी किसी ने अपने घुटने से रामबदल की नाक पर प्रहार किया। रामबदल तकलीफ से इतना तेज चिल्लाया कि आसपास के पेड़ों पर बैठे हुए परिंदे उड़ गये और थोड़ी दूर पर खड़े मवेशी चलने लगे। एक बछड़ा तो दौड़ लगाता हुआ भागा। यहाँ तक कि भीड़ भी सहम कर छिटक गयी। अब जयप्रकाश भी पिता को देख पा रहा था। वह उसके पास जाने के लिए उठने की हिम्मत जुटाने लगा।

बैदजी हँसे।

अब सब मौन थे केवल बैदजी हँस रहे थे, "मूत दो इसके मुँह में।" फिर उन्होंने कहा, "मैं ही मूतता हूँ इस महकऊ साहब के मुँह में।"

कुछ पेशाब रामबदल के मुँह में गया। कुछ चेहरे पर, कुछ सीने पर और कुछ उस आदमी के हाथों पर जिसने दबाकर उसके मुँह को खोल रखा था।

मगर न जाने वह कैसी विलक्षण खुशबू थी कि अभी भी बरकरार थी। अंतत: रामबदल को घसीटते हुए एक तलैया के किनारे ले जाए गया। पीछे से जयप्रकाश भी लंगड़ाता, लड़खड़ाता, रोता-चिल्लाता, मदद के लिए आर्तनाद करता हुआ वहाँ पहुँचा।

तलैया के पास लोग सुबह-साँझ मल त्याग किया करते थे। अभी भी जगह-जगह वहाँ लोगों का हगा हुआ गू पड़ा था। उसी पर रामबदल को घसीटा गया, लथेड़ा गया। कुछ वक्त पीठ के बल लथेड़ा गया फिर पेट के बल। उसका पूरा शरीर मल से सन गया था। यहाँ तक कि उसका चेहरा भी गू से सना हुआ था। उसे तलैया में फेंक कर वे लोग चले गये।

जयप्रकाश छपाक् से तलैया में कूद पड़ा था। तैरते-तैरते वह पिता के पास पहुँचा। रामबदल का वजन ज्यादा था जबकि जयप्रकाश की अभी रेखें भी नहीं भीगीं थीं। मगर उस समय उसके भीतर ताकत का कोई सोता फूट गया था, वह पिता को तलैया से निकालकर बाहर ले आया। उसने पिता को ध्यान से देखा और फूट-फूटकर रोने लगा। अभी भी पिता का शरीर मल से लिथड़ा था। जगह-जगह खून के धब्बे और जख्म थे। उसने रोते हुए ही तलैया से अंजुरी भर पानी लिया और पिता का चेहरा धोने लगा। उसने फिर पानी निकाला...। वह पिता के शरीर की सफाई करता जा रहा था और रोता जा रहा था।

जब पिता का शरीर कुछ साफ हो गया तो उसने उसे घर ले जाना चाहा। उसने मदद के लिए चारों दिशाओं में देखा, वहाँ कोई मददगार नहीं था। वह क्या करे? कैसे पिता को घर ले जाए? लाचारी से उसने सोचा। कोई युक्ति समझ में नहीं आ रही थी। तभी उसे तलैया में उतरती हुई एक भैंस दिखी। उसकी आँखें चमकीं और वह तलैया में उतर गया। भैंस के पास पहुँचकर उसने उसकी पूंछ को मरोड़ा, पर भैंस पहले की तरह ही अपने में मगन रही। उसने उसके पुट्ठे पर घसा मारा। पुट्ठा थोड़ा फुरफुराया, भैंस थोड़ी सी हिली मगर पुन: पहले की तरह हो गई। वह भैंस के सामने आकर उसकी सींगों को पकड़ कर खींचने लगा। भैंस ने गरदन दायें मोड़ ली, बस। हार कर वह भैंस के ऊपर बैठ गया और अंधाधुंध जहाँ मिला वहीं उनके शरीर पर थप-थप मारने लगा...।

थोड़ी देर बाद भैंस उसे लेकर तलैया में उतरा रही थी। जैसे ही वह किनारे पहुँची, जयप्रकाश कूद कर पीछे आया और भैंस को धक्का दिया। भैंस लड़खड़ा कर तलैया से बाहर आ गई।

काफी मशक्कत के बाद उसने भैंस की पीठ पर पिता को लादा और घर की दिशा में भैंस को हाँकने लगा।

भैंस चल रही थी। रामबदल का शरीर हिल रहा था। कभी जब उसका कोई पैर या हाथ या उसकी गर्दन लटक कर नीचे गिरने को होती तो जयप्रकाश फुर्ती से वापस भैंस की पीठ पर रख देता। अब उसके आँसू सूख चुके थे और उसका सारा ध्यान इस बात की तरफ था कि पिता भैंस की पीठ से गिर न पड़ें।

वह भैंस को अपने घर की दिशा में ले जा रहा था लेकिन बीच-बीच में भैंस अपने घर की दिशा में मुड़ जाती। तब जयप्रकाश उस दिशा के सामने आकर रास्ता छेंक लेता। फिर भैंस उसी के घर की ओर चलने लगती।

आखिरकार रामबदल, जयप्रकाश और भैंस बस्ती में पहुँच गये। बस्ती में सन्नाटा बिछा हुआ था। सभी घरों में दरवाजे बन्द थे। सन्नाटा थोड़ी देर उसी तरह कायम रहा। फिर सबसे पहले स्त्रियों ने अपने-अपने किवाड़ों से झाँका, उसके बाद बच्चे घरों से बाहर निकले, उसके बाद कुछ बुजुर्ग आये और रामबदल को भैंस की पीठ से उतारा गया। अब जाकर जयप्रकाश को पता चला था कि वह तलैया से भैंस की पीठ पर बाप नहीं, बाप का शव लेकर आया था।

उसे यह भी पता चला कि कंटीली पत्तियों के रस से उसकी माँ को फायदा नहीं हुआ और वह थोड़ी देर पहले मर चुकी थी। पता नहीं वह हैजा से मरी या लंबरदार के यहाँ की बासी-तिबासी दाल खाने से मरी या किसी अन्य वजह से। फिलहाल वह मर चुकी थी और मरते समय उसके पास न उसका पति था न बेटा। नितांत अकेली मौत पाया था उसने। क्योंकि मरते समय उसके पास वह पड़ोसन भी नहीं थी जिसके जिम्मे रामबदल ने बैदजी की हवेली जाते समय पत्नी की देखरेख सुपुर्द की थी। पड़ोसन उस समय जानकी के पास से हटी थी, जब वह जानकी को पानी पिला रही थी। उसका पति घबड़ाया हुआ आया था तभी, "बैद महाराज रामबदलवा को मार रहे हैं और जयप्रकाश को ऐसा पटका कि क्या बतायें! अब यहाँ रहकर सेवा करोगी तो बैद महाराज दुश्मनी मानेंगे। चल निकल चल यहाँ से।" घबड़ाहट से पड़ोसन के हाथ की कटोरी अधिक टेढ़ी हो गई और उसका पानी जानकी के चेहरे पर गिर गया। उसे उसी तरह भीगी-भीगी छोड़कर पड़ोसन चली गई। नामालूम जानकी ने अपने चेहरे पर गिर आया पानी पोंछा था या वैसे ही मर गयी थी। यहाँ पर यह भी सोचा जा सकता है कि ऐसा तो नहीं कि जानकी प्यास से मर गई हो।

जानकी और रामबदल की मौत के बाद अब अपने परिवार में केवल जयप्रकाश जीवित था।

जैसा कि जीवित होने पर होता है, वह धीरे-धीरे बड़ा भी होता रहा...। एक दिन लोगों ने देखा, जयप्रकाश की मूँछें आ चुकी हैं। उसके बाजुओं पर मछलियाँ बन रही हैं और छाती थोड़ी सी आगे निकल आयी है...।

विचित्र बात यह हुई कि जयप्रकाश की स्मृति में माँ की मृत्यु से अधिक माँ का जीवन बसा था लेकिन पिता के जीवन से अधिक पिता की मृत्यु बस गई थी। पिता की मृत्यु से भी ज्यादा पिता पर हुआ अत्याचार उसकी स्मृति में भरा हुआ था। पिता की मृत्यु और पिता पर अत्याचार की स्मृतियों के बीच वह सुगन्ध बरसती रहती थी जो अंत समय के कुछ पहले पिता के शरीर में प्रकट हुई थी।

वह उस ख़ुशबू को भुला देना चाहता था क्योंकि वही उसके पिता की मौत का सलीब बनी थी। लेकिन बार-बार वह किसी न किसी रूप में उसे झकझोर देती थी। वह बड़ा हो चुका था, और वक्त बहुत सारे जख्मों को भर देता है तथा स्मृतियों को पोंछ देता है। लेकिन उसके साथ अभी भी स्थिति यह थी कि यदि कोई ख़ुशबू उसके पास आ जाती तो वह भयभीत होकर उससे दूर हट जाता या उसे ही दूर हटा देता था। उसी तरह जैसे बचपन के दिनों में उसके द्वारा लगाये गये दवाई के पौधों को उसके पिता ने उखाड़ फेंका था। एक बार करीब-करीब उसी तरह की घटना की आवृति हुई...।

...उसके घर के पास जाने कहाँ से गेंदे के कुछ पौधे उग आये। न जाने कैसे? वहाँ कभी किसी शव से गेंदे के फूल गिरे थे, या कोई पुजारी चोरी-छिपे उस बस्ती में आया था और फूल घबराहट में गिर गये थे, या उस बस्ती की कोई युवती श्रृंगार के लिए फूल चुराकर आ रही थी, तभी देख लिये जाने पर भागी हो और गेंदे के कुछ फूल गिर पड़े हों। यह भी मुमकिन है कि किसी ने तंत्र-मंत्र करने के इरादे से उस बस्ती पर थोड़े से गेंदे के फूल फेंक दिये हों- जो भी रहा हो, उन फूलों के भीतर छिपे बीज एक दिन जयप्रकाश के घर के सामने किशोर पौधों के रूप में तैयार हो चले थे, और पीले-पीले कई फूल खिल गए थे।

जब उसे किसी ने बताया कि उसके घर के पास उगे गेंदे के पौधों में खूबसूरत फूल उगे हैं तो वह घबराया और बदहवास हुआ- जैसे कुछ साल पहले उसके पिता दवाई के पौधों को देख कर हुए थे। वह भी पिता की तरह ही उन पौधों पर टूट पड़ा। कटे-नुचे उन पौधों को वह दूर फेंक आया था।

पर अजीब बात हुई कि जाने कहाँ से एक फूल का बीज वहीं छूट गया था जो दो-चार दिनों में मिट्टी की दुनिया में चला गया था। मिट्टी उसे पाल पोस कर एक दिन बाहर ले आयी। इस बार किसी ने जयप्रकाश को खबर दी कि उसके घर के पास गेंदे का एक पौधा उगा है। डरा हुआ जयप्रकाश बोला था, "उसमें फूल तो नहीं उगे?"

फूल अभी उगे नहीं थे फिर भी वह दौड़ा। इस बार उसने खुरपी से पौधे को खोदा और उसे जड़ों की तरफ से पकड़ कर फेंकने के लिए चल पड़ा। वह इस तरह पौधे को ले जा रहा था जैसे किसी मरे हुए साँप की पूँछ पकड़ कर फेंकने के लिए ले जा रहा हो।

उस दिन के बाद बहुत समय तक उसके जीवन में कोई फूल नहीं खिला था। वह अपने को निरापद समझने लगा था। ऐसा लगता था कि फूल, रंग उसकी जिन्दगी क्या, उसके ख़्वाब में भी नहीं बसते हैं।

लेकिन एक दिन उसने पाया कि रामबदल के शरीर से निकली हुई जिस ख़ुशबू को वह दूर फेंक आया था वह आठ साल देशाटन करने के बाद लौट आयी है, और उसके आस-पास मँडरा रही है। यह वह दिन था जिस रोज वह पत्नी का गौना कराकर ले आया था।

संयोग से पत्नी का नाम भी जानकी था जो उसकी माँ का नाम था। ससुराल में जब उसकी पत्नी को लोगों ने जानकी कह कर पुकारा था तो वह चौक गया था, और माँ की याद आकर उसे उदास कर गयी थी। किसी ने टोका भी, गवाहिया का मुँह लटका क्यों है? तब दूसरे किसी ने अंदाज लगाया कि गवाहिया को भूख लगी है। परिणामस्वरूप थोड़ी देर में उसके सामने कचालू से भरा एक बड़ा-सा कटोरा आ गया था। यूँ उसे भूख नहीं लगी थी लेकिन सामने कचालू देख कर उसे लगा कि वाकई उसे भूख लगी है। उसने कटोरे का सारा कचालू खा लिया। तभी उसे घर के भीतर से किसी स्त्री के खि-खि कर हँसने की आवाज़ सुनायी दी। वह अधिक देर उस हँसी पर नहीं टिका, उसने एक गिलास शरबत भी पी लिया। उस खान-पान से वह इतना तृप्त हुआ था कि जानकी नाम की पुकार से उसके भीतर उपजी माँ की याद की उदासी दूर चली गयी। वह सोचने में मशगूल हो गया कि जानकी को क्या कहेगा? जानकी को जानकी कह नहीं सकता क्योंकि यह उसकी माँ का नाम है। माँ मर गई थी तो क्या हुआ, माँ का नाम नहीं मरा था। इसलिए वह जानकी को जानकी नहीं कह सकता था। कोई पूछेगा कि उसकी पत्नी का क्या नाम है, वह क्या बतायेगा? शुरू-शुरू में बच्चे भी नहीं रहेंगे कि कहेगा, "मेरी घरवाली का नाम मुन्ना की माई है या मुन्नी की अम्मा है।" तब वह जानकी का कोई नया नाम रखे। क्या रखे? उसने सोचा, जानकी का उल्टा क्या बनेगा और पाया कि जानकी का उल्टा होगा- कीनजा। यह तो ठीक नाम नहीं बना। फिर उसने पहला अक्षर हटा कर नाम को छोटा किया, "नकी"। यह मुसलमानी नाम हो गया। अब उसने बीच "न" हटाया - जाकी। ये भी कुछ-कुछ मुसलमानी या किरस्तानी जैसा लगता है, नहीं चलेगा। तब उसने अंत का "की" हटाया, अब बचा- "जान"। उसके होठ प्रसन्नता, लाज और अजीब से आवेग के साथ फड़कने लगे। वह मन ही मन बुदबुदाया, "मेरी जान मैं तुम्हें "जान" कहूँगा।"

मगर जब जान को विदा करा कर अपने गाँव लाया तो उसने जान को जान कहकर नहीं पुकारा। उसने उसको "ये", "वो", "हे" इत्यादि अक्षरों से सम्बोधित किया। जब एकांत पाकर उसने जान का घूँघट उठा कर उसका मुखड़ा देखा तब तो वह "ये", "वे", "हे" इत्यादि भी नहीं कह सका। उसकी वाणी मूक हो गयी थी और आँखें जड़। उसे कुछ सुनाई भी नहीं दे रहा था, बस चारों ओर सन-सन सा लग रहा था। वह इतना

आकर्षणबिद्ध हो गया था कि जान को रात में खिलाने के लिए कोस भर दूर स्थित बाजार से बालूशाही खरीद लाया था। जिंदगी में उसने पहली बार बालूशाही खरीदी थी, बल्कि उसने पहली बार कोई मिठाई खरीदी थी। दुकान पर जाकर उसने पूछा था, "दो बालूशाही कितने में मिलेगी?"

"आठ आना में।" दुकानदार ने बताया था।

वही दोनों बालूशाही रात में उसके पास थी। लेकिन जान ने उन्हें खाने से इंकार कर दिया।

"मैं तो न खाऊँगी।"

"अरे कभी खायी न होगी, खाकर तो देखो।"

"ऊँ हूँ।" जान ने इंकार में गरदन हिलायी।

"ये कोई गट्टा बताशा नहीं है, बालूशाही है, बालूशाही। बहुत महँगी है, अठन्नी में दो।"

"पर मैं तो न खाऊँगी बालूशाही।"

'"तो क्या खाओगी?"

"मैं तो कचालू खाऊँगी कटोरा भर कर।" और जान खिलखिला कर हँस पड़ी थी।

यह वही खिलखिलाहट थी, जो उसने ससुराल में कटोरा भर कचालू खा जाने के बाद सुनी थी। उस समय उसने उस हँसी को तवज्जो नहीं दी थी मगर इस वक्त खिलखिलाती हुई जान को देखकर वह सुध-बुध खो बैठा। उसे लगा, सारी दुनिया में केवल और केवल- हर जगह बस हँसती हुई "जान" है। ... तभी वह गंध टकरायी थी। वह गंध प्रकट हुई थी अथवा उसकी तीव्र स्मृति- लेकिन यह जरूर था कि वह गंध जयप्रकाश को बहुत पास महसूस हुई। वह जान के बहुत पास खिसक गया, फिर जान को भी अपने पास खींचा, लेकिन उसने पाया, वह गंध जान के शरीर से नहीं निकल रही थी। शायद वह गंध नहीं, उस गंध की स्मृति ही थी जो उसके भीतर अपने को जगा कर चली गई थी। जयप्रकाश बेचैन हो गया था। सारी रात वह जान के शरीर में आठ वर्ष पहले की उस विलक्षण खुशबू को ढूँढने का यत्न करता रहा।

सच है कि जान के शरीर से भी एक अनोखी महक निकल कर फैल रही थी जो जयप्रकाश को मतवाला कर दे रही थी। यह भी सच है कि इस अनोखी महक के

साथ-साथ जान के शरीर में कई अवांतर महकें भी थीं, लेकिन इनमें से कोई भी हजार ख़ुशबुओं की उस एक ख़ुशबू की बराबरी नहीं कर सकती थी जो आठ वर्ष पहले उसके पिता रामबदल में बस गयी थी।

अगले दिन उसमें इच्छा पैदा हुई कि वह उस पेड़ या पौधे को ढूँढे जो इस महक का जनक था। उसने सोचा कि खुशबू को पहले अपनी उंगली के पोर पर बहुत जरा सा लगा कर जान से कहेगा, "सूंघो"। जब जान कहेगी कि उसे भी यह खुशबू चाहिए तब वह कहेगा, "सोच लो, ये खुशबू चाहिए या कटोरा भर कचालू?" ...और मुस्कराते हुए वह उस खुशबू की पूरी शीशी जान को दे देगा।

मगर वह जानता था कि यह असंभव काम है। ऐसा सपना है जिसे सच नहीं होना है। ...धीरे-धीरे वह खुशबू फिर उससे दूर चली गई या वह ही उस ख़ुशबू से दूर हो गया था।

वह अपने वर्तमान में रम चुका था। जान के शरीर में बसी महक ही उसे जिंदगी की सबसे बड़ी नियामत लगने लगी थी। जब कुछ समय बाद जान के प्रति उसकी आतुरता मद्धिम पड़ी तब तक उसके कटोरा और कोमल बेटा-बेटी हो चले थे। अब उसके जीवन में बच्चों की यह नई ख़ुशबू थी। वह और जान जी भर कर मेहनत करते थे, कमाते थे और बच्चों को पाल रहे थे। दोनों बच्चे स्कूल भी जाते थे और पढ़ने में अच्छे थे। कटोरा तो बहुत ही अच्छी चल रही थी पढ़ाई में।

उसी कटोरा बिटिया के मार्फत कई साल बाद वह महक- वह कई साल पुरानी- रामबदल के शरीर में बस गयी वह अलौकिक महक जयप्रकाश के घर पर मँडराने लगी...।

जब कटोरा पैदा हुई थी, उस समय वह मालिक के यहाँ बैलों को सानी दे रहा था। यह मालिक बैदजी नहीं, एक वकील साहब थे। वकील साहब ने ही उसे बिटिया होने की खबर दी। मालिक ने ठिठोली की थी, "बेटा तो तुमको पैदा ही करना पड़ेगा जयप्रकाश, नहीं तो तुम्हारे बाद तुम्हारी बिटिया हमारे यहाँ हलवाही करेगी नहीं।" वह हँस पड़े, "यही पहलौठी है, चलो बिटिया ही सही।" उसे इस शुभ अवसर पर पांच पसेरी गेहूँ, दो पसेरी धान और चार भेली गुड़ मिला था।

वह इन सबको लेकर चलने लगा तो मालकिन ने रुकने का इशारा किया और भीतर चली गयीं। लौटी तो उनके हाथ में मिश्र धातु 'फूल' का एक कटोरा था। उन्होंने उससे कहा, "ले, इसी में अपनी बिटिया को भात खिलाया करना।"

वह अवाक् था। प्रसन्नता से उसकी वाणी अवरुद्ध हो गयी थी। आज पहली बार जस्ते के अलावा अन्य किसी चीज का बरतन उसके घर में दाखिल होने जा रहा था। उसके पास बिना मजूरी का पांच सेर गेहूँ, दो पसेरी धान, चार भेली गुड़ और एक फूल का कटोरा था। ऐसा तो उसने कभी सपना भी नहीं देखा था।

मालिक के यहाँ का काम-काज खत्म कर वह जब घर पहुँचा तो विलक्षण खुशी और मद से भरा हुआ था। कटोरा पीछे छिपाकर वह जान के पास आया और अनाज नीचे रख दिया। खटिया पर बिछे पुआल पर जान थी और उसके बगल में नवजात बिटिया थी। जान का चेहरा उदास था। वह मुस्कराया, पर जान नहीं मुस्करायी। वह हँसा, पर जान नहीं हँसी। उसने बिटिया की तरफ देख कर आँखें मटकायीं, जीभ निकाली, दाँत दिखाया पर जान कुछ न बोली। तब उसने जान से कहा, "बिटिया होने पर मालिक के यहाँ से पाँच पसेरी गेहूँ, दो पसेरी धान, चार भेली गुड़ मिला है।" जान हल्का सा, बहुत जरा-सा मुस्करायी। वह उत्साहित हुआ, "एक और बहुत बढ़िया चीज मालिक के यहाँ से मिली है।"

"क्या?" अब जान बोली।

"बूझो।"

"तरकारी।"

"नहीं।"

"दाल।"

"न।"

"कड़ुवा तेल।"

"नहीं रे।"

"कोई उतारन।"

"नहीं।"

"तब तुम्हीं बताओ।"

"हारी मानती हो।"

"हारी।"

जयप्रकाश ने किसी जादूगर की तरह पीछे छिपे हाथ को आगे लाकर कटोरा लहराया। वह उस कटोरे को सिर पर टोपी की तरह रखकर ठुमक-ठुमक कर नाचने लगा।

जान हँस पड़ी।

नाच खत्म करने के बाद उसने कटोरा खोपड़ी से उतार कर जान की गोद में रख दिया।

जान के चेहरे पर अद्भुत चमक उमड़ी। खास तौर पर आँखों में। उसने कटोरे को बड़े प्यार से छुआ। करीब उतने प्यार से जितने प्यार से अपनी बिटिया को पहले पहले छुआ था। वह कटोरे को घुमा फिरा कर देखने लगी।

"देख क्या रही हो, फूल का है, फूल का।"

"फूल! नहीं... नहीं...।" जयप्रकाश घबरा गया, "फूल नाम बहुत खतरनाक है।"

"तब कोई और नाम सोचो।" जान ने ठंडी साँस भरकर कहा।

उस वक्त उसने जान को कोई और नाम नहीं बताया लेकिन जब करीब साल भर बाद घर में पतीली में भात पका और उसका माड़ उसी फूल के कटोरे में रख कर बिटिया को पिलाया जाने लगा तो वह चिल्लाया, "अरे सुन रे सुन! बिटिया का नाम सूझ गया...। इसका नाम कटोरा...।"

जान हँसने लगी...। बिटिया को हाथों के पालने में झुलाते हुए बोली, "हो हो कटोरा।" उसने बिटिया को चूमा, "हमार कटोरा रे।"

सुबह जब वह कटोरे को साफ कर रही थी तो जैसे अपनी बिटिया को नहला रही थी...।

लेकिन फूल का कटोरा और जान की कटोरा सचमुच एक जैसे थे नहीं। फूल का कटोरा उतना ही बड़ा हमेशा रहा, जबकि जान की कटोरा बड़ी होती गयी। फूल का कटोरा आवाज़ करना जानता था लेकिन भाषा से अनभिज्ञ था। इधर जान की कटोरा भी शुरू-शुरू में आवाज़ करती थी पर जल्दी ही उसके पास भाषा हो गयी। कहाँ तक मुकाबला करता यह कटोरा उस कटोरा से। वह कटोरा तो स्कूल जाने लगी और तवे पर रोटी डालना भी सीख गयी। थोड़े समय बाद वह पहली कक्षा में पास हो गयी और चूल्हे की आग में रोटी भी सेंकने लगी।

एक दिन कटोरा पाँचवीं कक्षा में पढ़ने लगी तब उसने जयप्रकाश से पूछा, "बाबू, बाबा कैसे मरे थे?"

"तुमसे क्या मतलब कि बाबा कैसे मरे थे? फालतू बातें दिमाग में मत लाया कर।" जयप्रकाश ने डपट कर बिटिया को चुप करा दिया था।

लेकिन अगले कुछ समय बाद कटोरा ने नया सवाल किया, "बाबू जी, जो बैदजी हैं, बाबा को क्यों मारे थे? ये बाबा के मुँह में पेशाब कर दिये थे? पाखाना में लथेड़े गये थे बाबा? क्या किये थे बाबा?"

जयप्रकाश ने तेज झापड़ कटोरा के गाल पर मारा। जान चिल्ला उठी, "कसाई, बिटिया पर हाथ उठाता है।" फिर वह कटोरा पर झपटी, "तुझे ये सब कौन बता रहा है?" वह जोर से चीखी, "कौन बता रहा है बोल?" वह इतना तेज चीखी थी कि पास में खड़ा कोमल डर के मारे रोने लगा था। जान ने उसे एक घू'सा लगाया और कटोरा से बोली, "बता दे तुझे किसने ये सब बताया, नहीं तो आज तेरी खैर नहीं।"

कटोरा को लगा, अम्मा बहुत गुस्से में है। इतने गुस्से में कि उसने जवाब न दिया तो मार डालेगी या खुद मर जाएगी। उसने बतलाना शुरू किया..।

...हुआ यह था कि स्कूल में डिप्टी साहब का दौरा था। क्लास में डिप्टी साहब ने तीन सवाल बैदजी की पोती से किये, वह किसी का जवाब न दे सकी। फिर उन्होंने कहा, "जो-जो बच्चे इन सवालों का जवाब दे सकते हैं, हाथ उठायें।" केवल कटोरा ने हाथ ऊपर किया। डिप्टी साहब ने पूछा, "तुम्हारा नाम?" कटोरा बोली, "कटोरा।" सब बच्चे हँस पड़े। डिप्टी साहब भी। जब कटोरा ने सभी सवालों के सही जवाब दिये, तब भी डिप्टी साहब हँस पड़े, लेकिन यह जुदा ढँग की हँसी थी। वह खुश थे। वह कटोरा के पास तक आये, "शाब्बास, तुम बहुत अच्छी तरह पढ़ रही हो। इसी तरह मेहनत से पढ़ती रहो, खूब आगे जाओगी।" यह बात उन्होंने पूरी कक्षा के सामने की थी, अत: उनके जाने के बाद कटोरा इतराने लगी थी। छुट्टी होने तक तो उसकी चाल भी बदल गयी थी। कभी वह धीमे चलने लगती, कभी तेज, कभी फिर धीमे। शायद वह तय नहीं कर पा रही थी कि मौजूदा उपलब्धि के बाद उसे किस तरह चलना चाहिए।

स्कूल से घर का रास्ता लम्बा था, जिस पर चलते हुए वह अपनी नई चाल खोज लेने को आतुर थी। तभी... उसी समय बीच रास्ते में कुछ बच्चों ने उसे घेरकर नीचे गिरा दिया और लात घूसों से मारने लगे। बैद जी की पोती बोली, "कुतिया, डिप्टी साहब के

सामने अपनी औकात भूल गयी...। अरे मेरे बाबा ने तेरे बाबा के मुँह में मूता था, गू में लथेड़ा और मारकर तलैया में फेंक दिया था...।"

एक लड़का बोला, "इस साली की भी वही गति होगी।"

कटोरा मार नहीं महसूस कर रही थी न बचाव का कोई रास्ता ढूँढ रही थी। उसके दिमाग में बस अपने बाबा और बैदजी डोल रहे थे...।

यह सब कटोरा से सुनकर जयप्रकाश और जान सन्न रह गये। दोनों प्यार, करुणा और भय से कटोरा को देखते रहे। वे कुछ बोलने की स्थिति में नहीं थे, न उन्होंने कुछ बोला। उस रोज कटोरा का प्रश्न अनुत्तरित रह गया था...।

जल्दी ही कटोरा ने जयप्रकाश के सामने नए सवाल का विस्फोट किया, "बाबा के बदन में कोई बहुत अच्छी महक पैदा हो गयी थी? कैसी थी वह महक?"

जयप्रकाश चौंक गया। उसे उस पुरानी महक की आहट महसूस हुई। उसे लगा, उसकी परछाईं अभी आयी थी और यहीं कहीं ओट में छिप गयी।

"बाबू वो महक हमें भी चाहिए। हमारे अंदर कैसे पैदा होगी वो? उस महक लो लेकर हम स्कूल जाएंगे।"

जयप्रकाश धीरे-धीरे फटी हुई आवाज़ में बोला, "वह महक जंगल में तुम्हारे बाबा को मिली थी।"

"तो हमको भी जंगल से ला दो वह महक। उसको लगाकर मैं स्कूल जाऊँगी।"

तब तक बाहर से जान की आवाज़ आई, "कटोरा... जा मालिक के यहाँ दुआर बहार आ...।"

कटोरा जाने लगी लेकिन उसने जाते-जाते भी कहा, "बाबू जंगल जाकर वो महक ले आना।"

कटोरा के चले जाने पर वह अकेला रह गया। वह जहाँ खड़ा था, वहीं उकड़ू बैठ गया। उसने चेहरे को हथेलियों से ढक लिया और सोचा, "कटोरा की इस जिद का मतलब क्या है? ये तो कभी कुछ माँगती नहीं थी, छुटपन में भी नहीं। हमने अपनी तरफ से भी इसके लिए कभी कुछ नहीं किया। फिर यह उम्मीद क्यों कर रही है, वह भी ऐसी चीज़ की।"

उसे कटोरा पर दुलार आने लगा, "आज यह पहली बार कुछ माँग रही है। कोमल के लिए तो काफी कुछ किया है हमने। कोमल जब छोटा था और रोता था तो उसे चुप कराने के लिए, बाँस की सटकनी से भाली बजाने लगता था मैं। कभी-कभी ढेले से गगरी बजाता था। एक बार गगरी बजाकर मैंने एक पूरा गाना ही गाया था। कोमल को मेले से दो बार पिपिहरी और एक बार फिरकी खरीद चुका हूँ, मगर कटोरा को? आज तक कोई खेलने का सामान नहीं खरीदा उसके लिए। कोमल को मैंने बचपन में मिट्टी का आम बनाकर दिया था। मिट्टी की थाली, मिट्टी की तलवार और मिट्टी का ही लड्डू बनाकर दिया था। जान भी जब रोटी सेंकती थी तो कभी-कभार गुँथे हुए आटे से चुटकी भर निकाल कर कोमल के लिए चिड़िया बना देती थी।

किसी-किसी रोज वह आटे की मूँछ बनाकर कोमल की नाक के नीचे चिपका देती- लेकिन कटोरा के लिए वह बाजार, मेला से कभी इस तरह की खेलने की चीज नहीं लाया, न मिट्टी का खिलौना बना कर दिया और न जान ने गुँथे आटे की मूँछ बना कर कटोरा की नाक के नीचे चिपकायी। ठीक है, कटोरा लड़की जात ठहरी जिसके मूँछ नहीं होती, लेकिन जान उसकी नाक पर आटे की कील तो चिपका सकती थी, कानों में आटे का बुंदा पहना सकती थी। चाहती तो गले में आटे की माला पहना देती। ठीक है कि माला में ज्यादा आटा खर्च हो जाता। उतने में एक रोटी बन जाती। लेकिन क्या हुआ, एकाध बार तो एक रोटी की भूख भी बिटिया के लिए सही जा सकती थी। पर जान को अकेले क्यों गलत ठहराये, उसने और जान दोनों ने कटोरा के साथ भेद किया है। हम दोनों ही उसके दोखी हैं।"

वही कटोरा अब वह महक माँग रही है, जिसकी वजह से उसके बाबा की मौत हुई थी। मौत क्या कत्ल हुआ था। जयप्रकाश को खटका हुआ, कहीं ऐसा तो नहीं कि भूत-वूत लग गया हो कटोरा को? और वही ख़ुशबू माँग रहा है कटोरा की जबान से। वह चिंतित हो गया कि इसी उमर में बिटिया को भूत-प्रेत लग गया तो क्या होगा? वह परेशान होकर जान के पास जाने के लिए उठा।

उस समय जान कोठरी में थी। नहाकर उसने अपनी साड़ी को अपने स्तनों पर इस तरह बाँधा था जिस तरह एक दौर में फिल्म अभिनेत्री वैजयंती माला ने बाँधा था और उसके बाद के दौर में मुमताज ने। उसके बाद तो श्रीदेवी ने और इधर की कई अभिनेत्रियों ने बाँधा, उदाहरणार्थ अमीषा पटेल और प्रीति जिंटा ने। इन अभिनेत्रियों को देखकर किसी के मन में कुछ आया हो या ना आया हो लेकिन उन्हीं की शैली के परिधान में जान को देख कर जयप्रकाश के मन में जरूर कुछ आया। जान जब कोठरी में घुसी थी तो उसके बाल सूखे थे और बँधे थे जबकि स्तन अधखुले थे। इसी समय

जयप्रकाश के मन में बवंडर आया था जिसकी चपेट में फँस कर जान खटिया पर गिर पड़ी। थोड़ी देर बाद जब बवंडर का हमला थमा तो जान को लगा, उसका नहाना धोना सब खराब हो गया। उसकी इच्छा हुई कि उठे और फिर नहा ले। मगर वह बेइन्तहां आलस और थकान से भर गयी थी। इसलिए वह उसी तरह लेटी रही। लेटे-लेटे ही उसने सुना कि जयप्रकाश कह रहा है- "बड़ी चिन्ता हो रही है कि कटोरा को कहीं..."

"क्या हुआ?" जान जयप्रकाश की बात को बीच में ही काट कर बोली।

"कटोरा बड़ी जिद्द कर रही है कि कटोरा को वो महक चाहिए जो मरने के पहले काका के बदन में पैदा हो गयी थी। हमको शक हो रहा है कि कहीं उसको काका का भूत-वूत तो नहीं पकड़ लिये है।"

जान ने कुछ नहीं कहा तो जयप्रकाश कहने लगा, "अब तुम्हीं बताओ, जो लड़की आज तक किसी चीज के लिए जिद न किये हो वह एक दिन यकायक इस तरह की चीज माँगने लगे... तुम मानो न मानो, इसे जरूर काका का भूत लगा है।"

"नहीं मुझे तो ऐसा नहीं लगता।"

"क्यों?"

"क्यों का क्या मतलब?" जान अचानक फुर्ती से पलटी और उसके ऊपर आ गयी। जयप्रकाश को लगा, थोड़ी देर पहले उसके भीतर उठा बवंडर जान के भीतर पहुँच गया क्या? उसने जान के चेहरे को अपनी अँजुरी में रख कर पूछा, "ये मेरे ऊपर क्यों लद गयी?"

"तुमसे एक बात कहने के लिए।"

"क्या?"

"कि मुझको भी काका का भूत लग गया है... मुझको भी वो महक चाहिए।"

"तुम क्या करोगी?"

"उसको लगाकर मैं गाँव में घूमूंगी और दूर-दूर तक के गाँवों में महकूंगी।"

"अरे... क्या कटोरा तुमसे बात कर चुकी है?"

"नहीं तो। तुम्हारी माँछु (कसम)।" उसकी हैरानी देखकर जान सच-सच बोली।

"तो तुमने ही अपने चक्कर में कटोरा को बरगलाया है।"

"अई हमको दुनिया से उठा ले जो इस बारे में कटोरा से हमारी कोई बात हुई हो।"

"फिर कैसे दोनों एक ही तरह की बात बोली?" जयप्रकाश पसोपेश में पड़ गया।

"होता है कभी कभार।" जान ने समझाया, "कई बार ऐसा हुआ है। एक बार रोटी के साथ तुम्हारा पियाज खाने का मन हो रहा था, तुम्हारे बिना बताये मैंने पूछ लिया था कि पियाज लोगे। तुम्हीं ये बात बोले थे। यह भी कि एक बार तुम्हारा माथा दरद कर रहा था, इस बात को जाने बिना मैंने तेल ठोंकना शुरू कर दिया था, और अब मैं भी कबूल करती हूँ कि पिछले महीने जब तुम बाजार गये थे तो मैं सोच रही थी कि किसी दिन घुइयाँ की तरकारी खाने को मिलती, और तुम लौटे तो गजब घुइयाँ लेकर आये थे...। तो इस तरह हो जाता है कि किसी दिन एक ही बात दो लोगों के मन में आ जाए।"

"तो क्या कह रही हो, मैं कहाँ से लाऊँ वह महक। वहीं कहीं रखी तो है नहीं कि उठा लाऊँगा। मुझे तो यह भी नहीं पता कि वह किस पेड़ या पौधे में है। फूल में है कि फल में है। पत्ती में है कि तने में है...।"

"इतना तो मालूम है कि वह जंगल में है।"

और जंगल में उस ख़ुशबू की खोज अब पहले जैसे खतरनाक नहीं थी, क्योंकि बैदजी का रुआब पहले जैसा नहीं रहा था। उनकी पोती ने कटोरा को पीटा था, गाली दी थी सच है, लेकिन यह भी सच है कि बैदजी के पास अब वैसी सत्ता नहीं बची थी कि किसी को रामबदल की तरह की सजा दें। उनका बड़ा बेटा एक कत्ल के मामले में जेल की चक्की पीस रहा था। छोटे ने दो साल पहले खुदकशी कर ली थी। चार बेटियों के दहेज में उनकी काफी दौलत फुँक गयी थी। रही सही कसर पूरी कर दी उनकी और पत्नी की बीमारियों ने। बैदजी को हृदयरोग हुआ और उन्हें दिल्ली जाकर ओपन हार्ट सर्जरी करानी पड़ी थी। इसी तरह पत्नी की दोनों किडनियाँ खराब हो गयी थीं। नई किडनी के प्रत्यारोपण के लिए वे लोग हैदराबाद गये थे।

इसके बावजूद पत्नी अधिक दिन नहीं चलीं। उनके अंतिम संस्कार में बैदजी को कई गाँवों को खाना भी खिलाना पड़ा था। इस तरह बैदजी की आर्थिक मजबूती की कमर टूट गयी थी। न केवल आर्थिक मजबूती की कमर टूटी थी, उनकी खुद की कमर भी टूट चुकी थी। आपरेशन से खड़े तो हो गये थे लेकिन भचक-भचक कर चलते थे। न

केवल कमर टूटी थी बल्कि उनके दांत भी सारे टूट गये थे और डेन्चर उन्होंने लगवाया नहीं था। दांत और कमर ही नहीं, बैदजी के मनोबल, कायाबल आदि भी टूट चुके थे। उनकी आँखें भी अब मुलमुलाती ज्यादा थीं, देख बहुत कम पाती थीं। बैदकी अब चलती नहीं थी क्योंकि उनकी और पत्नी की बीमारियों में उनके बैदकी इलाज की नाकामयाबी से उनकी कीर्ति में बट्टा लग गया था। दूसरे, इन वर्षों में यकायक आसपास अनेक मेडिकल स्टोर खुल गये थे। स्वयं गाँव के दसवीं बारहवीं फेल पाँच लड़कों ने नजदीक के बाजार में अपना-अपना मेडिकल स्टोर खोला था और वे आला लगा कर, इंजेक्शन चुभोकर डाक्टरी भी किया करते थे। मरीजों के लिए बैदजी से अधिक वे विश्वसनीय हो गये थे।

बैदजी का गाँव में अब भी जो थोड़ा रुतबा बचा था तो अपनी वजह से नहीं, अपने उस कातिल बेटे के कारण जिसने दिन दहाड़े भरे बाजार में कत्ल किया था। उसके आतंक का लाभ बैदजी को इतना ही मिल रहा था कि अब भी कोई उनके बगीचे से फल और खेत से गन्ने नहीं तोड़ता था और कोई उन्हें अबे-तबे नहीं कहता था। बस इतना ही था।

इस सबके अलावा खास बात, बैदकी न चलने के कारण अब बैदजी का जंगल से कोई संबंध नहीं रह गया था। इसलिए जंगल में उस महक की तलाश में अब बैदजी से कोई खतरा न था।

जंगल में जयप्रकाश कई वर्षों बाद गया था। पुराना जंगल उसे नया-नया सा लग रहा था। लेकिन जंगल उसे बहुत पुराना भी लग रहा था। अब बहुत सारे नए वृक्ष उग आये थे। ढेर सारे नए पौधे, नई झाड़ियाँ। नए फल और नए फूल और नई पत्तियों से सँवरा हुआ था जंगल। लेकिन असंख्य वृक्षों की ऊँचाई बेतहाशा बढ़ गयी थी। उनके तने खूब मोटे हो गये थे। जो कभी टहनियाँ थीं अब वे डालें हो गयी थीं।

जयप्रकाश के मन में सबसे पहला ख्याल यह आया कि वह अपनी जेबों को मीठे, खट्टे, खटमिट्ठे फलों, फूलों और बीजों से भर ले। वह मुस्कराया था और उसे रामबदल याद आ गया था। वह उदास हो उठा था। उसे लिथड़े हुए, तलैया में फिंके हुए, भैंस पर लदे हुए पिता के दृश्यों ने घेरा और अंत समय की माँ प्रकट हो उठी उसके अंदर। उसने अवसाद से भरकर एक बार जंगल को दूर-दूर तक देखा...।

तभी वह पुरानी महक मँडराने लगी...। वह जल्दी से एक झाड़ी में घुस गया था और एक फूल को मसलने लगा था। उसने उंगलियों में लिपट आये उसके रस को सूंघा...।

वह जंगल में घुसकर कहीं से भी उस महक को तलाशने लगता था। इससे कई बार भटक जाता, जिन हिस्सों को वह तलाश चुका होता था, फिर उन्हीं में उस खुशबू को ढूँढने लगता था। क्योंकि जंगल के बहुत से इलाके एक जैसे थे, उसे लगा कि यह तरीका ठीक नहीं। घूम फिर कर फिर उसी जगह पहुँच जाता है और मेहनत अकारथ चली जाती है।

उस दिन वह जंगल से सीधे घर नहीं, बाजार पहुँचा। दुकानदार से डोरी माँगी। लाल रंग की डोरियाँ लेकर वह घर लौटा।

अगली बार अभियान के लिए उसने जिस जगह को चुना, कार्रवाई पूरी कर लेने के बाद वहाँ के आखिरी पेड़ की कमर में लाल डोरी बांध दी, ताकि शिनाख्त हो सके कि यहाँ तक वह महक को तलाश चुका है। मगर दुबारा वहाँ गया तो परेशान हो गया। लाल डोरी दिख नहीं रही थी। पेड़ की कत्थई छाल में लिपटी डोरी का लाल रंग विलीन हो गया था। तब वह फिर बाजार गया था। खड़िया लाया। अगली बार उसने जंगल से लौटते वक्त आखिरी पेड़ के तने पर खड़िया से एक बड़ा सा गोला बना दिया।

गोला खींचने के पहले वह हिचका था। दरअसल पहले उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि पेड़ के तने पर क्या बनाये? उसके मन में पहला विचार तो यही आया कि पिता को बना दे। पिता को चित्रित करने का इरादा करने पर पसोपेश में पड़ गया कि पिता को किस मुद्रा में बनायें? इच्छा हुई, पिता के उस क्षण को उकेरे जब वह भैंस पर लटके हुए थे। किन्तु ऐसी चित्रकला उसके लिए सम्भव नहीं थी। क्योंकि माहिर तो दूर, वह मामूली चित्रकार भी नहीं था।

अत: जयप्रकाश ने पेड़ के तने पर गोला बनाया।

वह भैंस पर लिटे लटके अपने पिता का चित्र पेड़ के तने पर नहीं बना पाया था तो क्या हुआ! उसके अन्दर गोले वाले पेड़ की तरह का ही एक पेड़ उग आया था। बल्कि गोला वाला पेड़ उसके भीतर के पेड़ का अक्स लगने लगा था। भीतर का पेड़ असली हो गया था और आँखों के सामने का पेड़ नकली। यहाँ तक कि उसकी आँखें भी भीतर की आँखों की प्रतिलिपि हो चुकी थीं। उसने भीतर की आँखों से भीतर के पेड़ को देखा, उस पेड़ के तने पर गोला नहीं, भैंस पर लिटा-लटका रामबदल बना था। अब उसने बाहर की आँख से बाहर के पेड़ के तने को देखा। उन आँखों को भी गोला बिल्कुल गोला नहीं लगा। लगा कि गोला, गोला नहीं, भैंस पर लिटा-लटका जयप्रकाश का बाप रामबदल है।

अगली बार जब वह जंगल पहुँचा तो फिर परेशान हुआ, वह गोला मिट चुका था। हालाँकि उसके भीतर के पेड़ के तने पर बना भैंस पर लिटालटका उसका बाप नहीं मिटा था।

पर समस्या थी कि वह फिर भटक गया था। उसने पिछली बार जंगल में कहाँ तक उस महक को खोजा था, पहचान नहीं पा रहा था।

पुन: उस दिन वह उल्टे पाँव चला आया था। लेकिन उसी दिन थोड़ी देर बाद वह फिर जंगल गया था। इस बार उसके पास सफेद डोरियाँ थीं। थोड़ी मोटी और चपटी। उस रोज उसने आखिरी पेड़ की कमर पर एक मोटी और चपटी डोरी बांधी थी।

आज भी अभियान खत्म हो जाने पर उसने आखिरी कतार के एक पेड़ की कमर पर सफेद डोरी बांधी। उसके बाद झोले से गमछा निकाल कर पसीना पोंछा। फिर उसने गमछा झोले में नहीं, कंधे पर डाल लिया। डोरी का बंडल झोले में रख कर वह प्रस्थान के लिए तैयार हुआ।

उसे कामयाबी नहीं मिली थी। कामयाबी उतनी दूर थी जितने पहले। ...और वह हमेशा की तरह बेहद करीब भी थी, जैसे पहले थी। हो सकता है कि कल वह जिस पेड़ से शुरूआत करे उसी के फूल में या पत्तियों में या उसकी छाल के भीतर वह छुपी हो, और प्रकट हो जाए। कौन ठीक, अभी रास्ते में ही किसी पेड़ से कोई फूल टूटे और उसके गमछे पर आ गिरे, वह वही हो जिसमें वह महक बसती है। यह भी मुमकिन था कि साल दर साल बीत जाए और सबसे आखिर में जो वृक्ष बचे, उसमें वह महक निवास करती हो। इस तरह वह खुशबू बहुत दूर थी और बहुत पास भी थी, जिसे कटोरा चाहती थी, और जिसे कई महीनों से जयप्रकाश ढूँढ रहा था।

वह जंगल से बाहर आया। उसे याद हुआ, यही वह जगह है, जहाँ उसने कभी रामबदल से कहा था, "काका... काका... तुम्हारे बदन से ख़ुशबू आ रही है।" वह कोमल जितना बड़ा रहा होगा तब। उसी समय उसकी आँखों के सामने कोमल का चेहरा घूमा। वह मुस्कराया, "आज अखबार देखकर पगलाया हुआ था वह। अरे फोटू छपी है तो छपी है। कतल डकैती के मामले में तो छपी नहीं है।"

तभी कोमल सुबह की तरह ही तेज-तेज चलता प्रकट हुआ। इस दफा उसके पास कोई अखबार न था। लेकिन वह सुबह की तरह ही खुशी से लबरेज था...। साँस फूल जाने के कारण वह ठीक से बोल नहीं पा रहा था, "बाबू... बाबू...।"

"क्या हुआ? फिर कोई फोटू छपा है?"

"फोटो नहीं बाबू... माल मिलने वाला है, माल।" वह तर्जनी उंगली पर तेज गति से अंगूठा फेरने लगा, जैसे जल्दी-जल्दी रुपये गिन रहा हो, "कई लोग आये हैं घर पर... मोटर से हैं... बहुत मस्त बात है... माल मिलेगा बाबू...।" उसकी जीभ बोलते समय लटपटा जा रही थी। आँखों में अजीब सा उन्माद चमक रहा था,

"क्यों रे, पगला गया है क्या?"

"नहीं बाबू! सही कह रहा हूँ..." वह इतने उत्साह में आ गया कि बाप से हाथ मिलाने लगा। उसने जयप्रकाश के हाथ को अपनी दोनों हथेलियों के बीच दबाकर जोर से हिलाया, "बाबू हाथ मिलाओ... कितनी खुशी की बात है।"

जयप्रकाश को यह गुस्ताखी बरदाश्त न हुई कि बेटा उससे हाथ मिलाये। उसने हाथ छुड़ाकर एक जोर की लात कोमल को मारी, "ससुर ये क्या माल-माल की रट लगाये हो।"

लेकिन कोमल झूठ नहीं बोल रहा था। जयप्रकाश की गरीबी गायब होने के आसार दिखने लगे थे। अखबार में छपी रवि कुमार की रिपोर्ट अपना असर दिखा रही थी...।

जयप्रकाश और कोमल घर पहुँचे। छोटा-मोटा मेला लगा हुआ था। बस्ती के मैले-कुचैले बच्चे वहाँ खड़ी मोटरों के चारो तरफ मँडरा रहे थे। गाँव के बड़े बुजुर्ग भी आ गये थे और शहरी मेहमानों से बातें करने की कोशिश कर रहे थे। वैसे मेहमान यही चाहते थे कि गाँव वाले उनसे सटने-लसने की हिमाकत न करें। उनके सरोकार और उनकी दिलचस्पी महज जयप्रकाश में थी। जयप्रकाश में भी नहीं, बल्कि उसकी उन चमत्कारी दवाइयों में थी जिनके बारे में रवि कुमार ने अपने अख़बार में काफी बढ़ा-चढ़ा कर मिर्च मसाले के साथ लिखा था। उसने जयप्रकाश को आधुनिक युग का चरक या सुखेन वैद्य घोषित किया था और लिखा था कि उसके पास ऐसी ऐसी वानस्पतिक औषधियाँ हैं जो चिकित्सा विज्ञान की दुनिया में क्रांति कर सकती हैं।

आने वालों में कुछ अधकपारी, बवासीर, दमा और गठिया के धनाढ्य रोगी थे। कुछ सौदागर थे। सौदागरों में एक चाहता था कि जयप्रकाश उससे दस हजार महीना ले। बदले में उसके द्वारा रजिस्टर्ड मरीजों को दवा दे। शर्त यह थी कि जयप्रकाश अपने मन से किसी भी मरीज को कभी दवाई न देगा।

एक का कहना था कि वह जयप्रकाश को दस की जगह पंद्रह हजार रुपये प्रतिमाह वेतन दे सकता है, बशर्ते वह उन दवाओं को उसके लिए बनाए। वह उन्हें अपनी मर्जी के दाम पर बेचेगा। यदि जयप्रकाश चाहे तो वह तनख़्वाह की जगह जयप्रकाश को मुनाफ़े में एक फीसदी हिस्सा देने पर भी राजी हो सकता था।

वहाँ पर आयुर्वेदिक दवाओं की भारत में सबसे पुरानी कंपनी का एजेंट भी पहुँचा था। उसकी रुचि उन वनस्पतियों में थी जिनसे दवाइयाँ तैयार होती थीं। उसका प्रस्ताव था कि यदि वाकई दवाएं कारगर हुईं तो उनकी वनस्पतियों की शिनाख़्त कराने पर उसकी कंपनी जयप्रकाश को ढाई लाख रुपये दे सकती थी।

कुछ ऐसे लोग भी आये थे जो अधकपारी, दमा, बवासीर, गठिया में से किसी भी रोग से ग्रस्त नहीं थे। वे सौदागर भी नहीं थे। दरअसल जयप्रकाश के पास अन्य प्रकार की चमत्कारी दवाएं, जड़ी-बूटियाँ होने की उम्मीद उन्हें यहाँ खींच लायी थी। इनमें कैंसर जैसे असाध्य बीमारियों के रोगी या रोगियों के निकट जन थे। पर कई अलग ढँग के भी थे। मसलन एक वृद्ध को लिंग और योनि दोनों की शिथिलता दूर करने की दवाई चाहिए थी। एक सुंदरी अपनी साँस की बदबू से निजात चाहती थी दूसरी साँवलेपन से। एक अधेड़ युवती पुन: यौवन हासिल करने के लिए व्यग्र थी। इतना ही नहीं, उसे पुन: रजस्वला होने की भी दरकार थी। एक युवक अपनी समलैंगिकता से शर्मशार था, एक किशोरी अपनी नाक के नीचे तेजी से उभर रही मूंछों से। एक पत्नी अपने पति को नपुंसक बना देने की दवाई चाहती थी, तो एक भाई दूसरे भाई को विक्षिप्त बना देने वाली औषधि ढूँढ रहा था।

जयप्रकाश चिल्ला पड़ा, "हमारे पास ऐसी किसी भी चीज की दवाई नहीं है।"

कोमल उससे भी अधिक तेज चिल्लाया, "पर अधकपारी, गठिया, दमा और बवासीर की दवाई मिलेगी...ई...ई...।"

जयप्रकाश ने अधकपारी, गठिया, दमा और बवासीर के मरीजों को दवा दी और सौदागरों की पेशकश को सुना। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि क्या करे। यहाँ तक कि सौदागर दो दिनों बाद आने की बात कहकर चले गये, फिर भी उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि क्या करे?

जयप्रकाश की उलझन यह नहीं थी कि वह इतनी पेशकशों में किस एक को स्वीकार करे? यह तो बाद की बात थी। वह अभी इसी में फंसा था कि उसे इस धंधे में जाना चाहिए या नहीं जाना चाहिए? दरअसल उसका यह पुराना ऐतबार बार-बार उठ खड़ा

हो रहा था कि दवाई का पैसा लेने से पाप होता है। यह तो एक दिक्कत थी। कुछ अन्य मसले भी थे जो ज्ञान के व्यवसायीकरण का उसका रास्ता रोक रहे थे।

सारी बाधाएँ खत्म कर दी गयी थीं।

पुरोहितजी ने पोथी देखकर बताया, "अगर तुम अपनी कमाई का एक अंश ब्राह्मणों को दान करते रहोगे तो दवा का पैसा लेने से किसी भी प्रकार का कोई भी पाप नहीं चढ़ेगा।"

जयप्रकाश को यह डर भी सता रहा था कि पता नहीं कैसा पचड़ा है! तमाम कागजों पर दस्तखत कराने की बात हो रही थी, कोई झमेला न हो। जेल की चक्की पीसनी पड़े या मुकदमेबाजी में फँसा दिया जाए। यहाँ उसकी मदद के लिए उसके मालिक वकील साहब खड़े थे। उन्होंने जयप्रकाश का हौसला बढ़ाया, "मैं एक-एक कागज को जाँच लूंगा, तब तुम दस्तखत करना। साले कुछ बदमाशी करेंगे तो भूसा भर दूंगा। मुकदमे से मत डरो। मेरे रहते तुम्हारा कोई कुछ बिगाड़ नहीं सकता। हाईकोर्ट में मेरे दामाद के मौसा जज हैं।"

जान की भी राय थी कि जब भगवान ने छप्पर फाड़ के दिया है तो क्यों न कमा लिया जाए। उसने जयप्रकाश से कहा, "अब सोचो बिचारो मत। जिसमें ज्यादा फायदा दिखे, उसी काम के लिए हाँ कह दो। रुपिया हो जाए तो हम भी दुई-चार बीघा खेत खरीद लेंगे।"

"पर तब उस महक का क्या होगा? वह तो मिली नहीं। तुम उसे लगा कर गाँव में कैसे घूमोगी और चार गाँव तक महकोगी कैसे?"

तब तक कटोरा आ गयी, "उसे लगा कर मैं स्कूल कैसे जा पाऊंगी? बाबा तुम गाँव में रहो और वह महक मुझको लाकर दो, चाहे जैसे।"

"तुझे महक चाहिए, ले।" जान ने कटोरा का हाथ ऐंठ कर उसे ठोंका। वह दर्द से दुहरी हो गयी तो थप्पड़ भी मारे।

जयप्रकाश को गुस्सा आ गया, "खबरदार जो हाथ उठाया।" वह कटोरा के आँसू पोंछकर उसका सिर सहलाने लगा, "मैं अब कहीं नहीं जाऊंगा। मुझे नहीं कमाना है रुपिया। मैं यहीं गाँव में रहूंगा और उस महक को खोजूंगा, जिसे लगाकर हमारी कटोरा बेटी को स्कूल जाना है।" कटोरा ने दुलार से अपना सिर बाप की छाती में गड़ा दिया।

जान डर गई। उसे लगा, उसका पति वाकई यहीं न रह जाए और उस महक के चक्कर में जिन्दगी बरबाद करता रहे। आखिर काफी सोच-विचार कर उसने पति की सद्‌बुद्‌धि के लिए एक रणनीति बनायी जिसके तहत वह नहाने चली गयी और नहाकर उसी दिन की तरह वह आयी। यानि कि नहाकर उसने अपनी साड़ी को अपने स्तनों पर इस तरह बाँधा था जिस तरह एक दौर में फिल्म अभिनेत्री वैजयंती माला ने बाँधा था...। वह उसी सज्जा में जयप्रकाश के सामने पहुँच कर इठलाने मचलने लगी। किन्तु इस वक्त पिछली बार की तरह जयप्रकाश के भीतर बवंडर नहीं उठना था सो नहीं उठा। नतीजतन जान उसे लिये-दिये खुद की खटिया पर गिर पड़ी लेकिन जयप्रकाश अन्यमनस्क बना रहा और जान के मन में दुबारा नहा लेने की इच्छा नहीं प्रकट हुई।

जान के भीतर ख़ौफ बढ़ गया। उसने अंतत: कटोरा को ही समझा-बुझा कर रास्ते पर लाने की कोशिश की। उसकी इस कोशिश में कोमल भी उसके साथ था।

आखिर में सब निश्चित हो गया। तय हुआ कि कल जब सब लोग आयेंगे तो वकील साहब से पूछकर सबसे अच्छी पेशकश जयप्रकाश कबूल कर लेगा..। यह शाम की बात थी। उन लोगों को कल दिन में आना था। शाम और कल दिन के बीच अभी रात होनी थी। भोर होनी थी और थोड़ा सा दिन भी होना था। कहने का मतलब, छाया, धूप और अंधेरे को अपने कई काम करने अभी शेष थे...।

जयप्रकाश लालटेन जला कर चौखट पर रखने जा रहा था कि उसके घर में जंगल उतर आया और घर भर में जंगल ने अंधेरा कर दिया। अंधेरे में उसने महसूस किया कि जंगल ने उसकी जेबों में खट्टे, मीठे, खटमिट्ठे फल, फूल, पत्तियाँ और बीज भर दिये हैं। इस जंगल का हर पेड़ सफेद चिपटी पट्‌टियों की करधनी पहने था। अचानक उसने पाया कि हर पेड़ पर खड़िया वाला गोला बना है। जयप्रकाश इसे सह न सका। घबरा कर उसने आँखें मूंद लीं। आँखें मूंदते ही हर तरफ तेज रोशनी महसूस हुई और उसके भीतर के पेड़ों से जंगल भर गया, जिसके तनों पर गोला नहीं, भैंस पर लिटा-लटका रामबदल बना था...।

तभी उस पुरानी महक की स्मृति उसके आँगन में गिरी। शायद वह खुद नहीं थी, केवल उसकी आवाज थी।

जयप्रकाश को डर लगने लगा...।

"यहाँ खड़े-खड़े क्या करे हो?" यह जान थी, "चलो भीतर खाना खा लो।"

चौके में जान ने उसके सामने थाली सरकायी तो उसमें मोटी-मोटी रोटियाँ थीं और एक भर कटोरा कचालू था।

जयप्रकाश खाने पर टूट पड़ा और जान खिलखिला कर हँसने लगी। जंगल, महक-महक की आवाज, अंधेरा, रोशनी, गोला, भैंस पर लिटा-लटका रामबदल- सभी अदृश्य हो गये। जयप्रकाश के दृश्य में केवल जान थी, बच्चे थे, रोटियाँ थीं, कचालू था और कचालू का स्वाद था। और कल आने वाला दिन था।

जयप्रकाश खाकर उठने लगा तो जान ने उसे रोका। वह उठकर एक झरोखे तक गयी और आकर उसकी थाली में दो बालूशाही रख दी, "खा लो, बहुत महँगी मिलती है। एक रुपिया में दो।" वह फिर खिलखिलायी।

दिन का, ग्यारह-बारह के इर्दगिर्द का समय था। प्रधानजी के दुआर पर सब इकठ्ठे थे। सौदागर, प्रधानजी, वकील साहब, जयप्रकाश, जान, कोमल, कटोरा तो थे ही, गाँव के बहुत सारे लोग वहाँ थे। गरीब-दुखियारे जयप्रकाश की किस्मत को बदलते हुए देखने के लिए। इतनी भीड़ थी और शहर से आने वाले मेहमान इतने खास थे कि जयप्रकाश की बस्ती इस अवसर के सर्वथा अनुपयुक्त थी। इसीलिए प्रधानजी के दुआर पर इंतजाम किया गया था। प्रधानजी के यहाँ कुर्सियाँ थीं, खटिया पर बिछाने के लिए साफ बिस्तर थे, बेटों के विवाह में दहेज स्वरूप मिला सोफासेट था, टूटी-फूटी ही सही, क्राकरी भी थी। सबसे बड़ी बात, प्रधानजी की बहू अपने मैके से एक कैमरा भी लायी थी और उस कैमरे में अभी रील भी थी। बहू घूँघट में थी। उसने घूँघट में ढँकी अपनी आँख को कैमरे की आँख पर रखा और फोटो खींचने लगी। उसने कटोरा, कोमल और जान की फोटो खींची। कोमल की फोटो पत्रकार रवि कुमार ने भी जयप्रकाश के साथ खींची थी, पर जान और कटोरा जीवन में पहली बार तस्वीर में उतरे थे। जयप्रकाश तथा उसके परिवार के साथ बहुत कुछ ऐसा हो रहा था जो पहली बार हो रहा था। जैसे यही कि आज जयप्रकाश को पहली बार सबके बीच में सबके साथ- कुर्सी पर बैठने का मौका मिला था।

हालाँकि जयप्रकाश हिचक रहा था और कुर्सी पर बैठ नहीं रहा था मगर जब बहुत कहा गया तो बैठ गया था। सामने सोफा सेट पर शहर से आये हुए सौदागर बैठे थे। उनके आस-पास प्रधानजी, वकील साहब वगैरह विराजमान थे।

बातचीत शुरू हुई कि जयप्रकाश अन्यत्र देखने लगा। उसकी इस हरकत पर किसी ने उसे टोका पर कोई फायदा नहीं हुआ। वह उसी तरह कहीं और देख रहा था। तब लोगों

ने भी गरदन मोड़ कर देखा- बैद महाराज भचकते हुए चले आ रहे थे...। दो-तीन लोग उठे और उन्हें सहारा देकर एक कुर्सी तक ले आये...।

सब लोग अपने-अपने स्थान पर स्थिर हो गये। भीड़ में आपाधापी नहीं थी। वहाँ आगे पहुँचने की, बैठने की जगह हासिल करने की अब कोई जद्दोजहद नहीं बची थी। जो खड़े थे, वे निश्चिंत थे कि उन्हें अब बैठे रहना नहीं है। जो दौड़-दौड़ कर टहल कर रहे थे, उन्हें कोई फिक्र नहीं थी कि वे क्यों नहीं आराम से हैं। सभी थे अपनी-अपनी जगह। एक व्यवस्था, एक संयोजन चारो तरफ था। वार्ता प्रारम्भ हुई।

प्रधानजी ने पूछा, "जयप्रकाश तुमने इन लोगों की पेशकश को सुना, अब तुम्हें क्या कहना है?"

जयप्रकाश चुप रहा। सबने सोचा, कुछ वक्त बाद बोलेगा। मगर वह कुछ वक्त बाद भी खामोश रहा।

प्रधानजी ने इस बार अपने शब्दों पर जोर दिया, "जयप्रकाश, तुम खुश तो हो न?"

जयप्रकाश के चेहरे पर असंख्य रेखाएँ दौड़ कर आपस में भिड़ गयीं। जैसे किसी गहरी तकलीफ ने उसे दबोच लिया। उसे पसीना आ गया। उसके गलफड़े काँपे। इस समय विचित्र वारदात हुई। "जयप्रकाश तुम खुश तो हो" के जवाब में वह कहना चाहता था, "हां प्रधानजी, मैं आज बहुत खुश हूँ।" लेकिन उसने कहा, "मैं...मैं... कभी खुश नहीं रहा... और आज भी नहीं हूँ।" जयप्रकाश हैरत में पड़ गया- यह उसने क्या कह दिया?

असली हैरत तब और बढ़ी जब प्रधानजी सौदागरों की तरफ इशारा करते हुए बोले, "जयप्रकाश तुम्हें इन साहबों में किसकी पेशकश पसंद आयी?" जवाब में वह उत्साहपूर्वक कहना चाहता था, "सभी की। मुझे सभी की पेशकशें पसंद हैं।" लेकिन उसके मुँह से निकला, "किसी की नहीं पसंद है।"

एक भयानक घालमेल ने जयप्रकाश को अपनी गिरफ्त में कर लिया था।

भारत की सबसे पुरानी आयुर्वेदिक कंपनी के प्रतिनिधि ने कहा, "हम साढ़े-तीन लाख दे सकते हैं।"

"हुजूर हमें मंजूर है।" जयप्रकाश ने रज़ामंदी देनी चाही पर उसे कहा, "तुम चाहे जितना रुपिया बढ़ाओ, मैं तुम्हारे लिए काम नहीं करने वाला।"

बाकी सौदागर खुश हुए।<> जयप्रकाश को लगा, लम्बे वाक्य बोलने की कोशिश में वह गलत बोल दे रहा है। इसलिए दस हजार प्रतिमाह देने वाले को जवाब में उसने केवल एक शब्द कहा- "मंजूर।" वह क्या, आवाज हुई- "नामंजूर।"

कटोरा, कोमल, जान सहित सारे लोग अवाक, परेशान और डरे हुए थे।

"तुम क्या चाहते हो?" पंद्रह हजार प्रतिमाह और मुनाफे में हिस्सा देने वाले ने पूछा।

"महक।" - जयप्रकाश के होंठ भी नहीं हिले थे लेकिन यह शब्द गूंजा।

जान डर गयी। उसे लगा, जयप्रकाश की तबियत ठीक नहीं। वह उसके पास आ गयी।

ठीक उसी समय वह कांड घटित हुआ। जयप्रकाश ने बैद महाराज की कुर्सी को धक्का दिया। वे गिर गये तो उनकी नाक पर अपने घुटनों से मारा और बैद महाराज के चीखने के पहले वह खुद दर्द से चीखा।

लोग हतप्रभ थे। प्रौढ़ जयप्रकाश एक नौ-दस साल के बच्चे की आवाज़ में चीखा था।

जयप्रकाश भी भौंचक था- वह तो उस तरह चीखना चाहता था जैसे उसका पिता रामबदल नाक पर घूसा पड़ने पर चीखा था। इतनी तेज़ चीख कि आसपास के पेड़ों पर बैठे परिन्दे उड़ गये थे और थोड़ी दूर पर खड़े मवेशी चलने लगे थे। एक बछड़ा तो दौड़ लगाता हुआ भागा भी था।

https://www.hindiadda.com/vajood/